शाही डाकू

लेखक—
(दाता दयाल महर्षि शिवब्रतलाल जी महाराज)

—:o:—

सम्पादक—
नन्दू भाई
निज़ामाबाद (दक्षिण)

—:o:—

अ० सहायक सम्पादक
देवीचरन मीतल
लेखराजनगर, अलीगढ़

—❀—

प्रकाशक—
नन्दू भाई प्रधान
शिव साहित्य प्रकाशन मंडल,
पो० दयाल नगर, अलीगढ़।

प्रथम संस्करण ० शाका १८८१ | सर्वाधिकार सुरक्षित | मूल्य २।।।)

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु, गुरुर्देव महेश्वरः
गुरु साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवेनमः

मंगला चरण

भक्ति दान गुरु दे मुझे, तू अंतर्यामी।
शीष झुके पद कमल में, बहुबार नमामी॥

दाता दानी साइयां, सब का हित कारी।
केहि बिधि स्तुति मैं करूँ, तू अन्तर्यामी॥

गुरु देवन का देव तू, घट घट का बासी।
अगमअपार अखंड नित, सुखमय सुख रासी॥

सत चित आनन्द रूपकी, महिमा अति भारी।
सहज अनादि अनन्त विभु, को वरणे पारी॥

अलख अगाध अथाह वहु, नहिं रंग न रूपा।
राधास्वामी आदि गुरु, अज अमर अनूपा॥

भूमिका

शाही डाकू एक ऐतिहासिक उपन्यास है।

उपन्यास और इतिहास में अन्तर होता है। इतिहास लेखक के लिये सच्चे और ठीक ठीक हालात के वर्णन करने को विवशता रहती है मगर कहानी लेखक इस प्रकार के बन्धन से स्वतंत्र हैं। इतिहास लेखक को आज्ञा नहीं है कि वह इतिहास लिखते हुये इसमें अपने विचारों को शामिल करे मगर कहानी लिखने वाले को स्वतंत्रता है कि चाहे उसकी पुस्तक के वीर और वीरांगनायें आदि इतिहास से सम्बन्धित ही क्यों न हों मगर वह उनके विचारों को अपने विचारों के अनुसार खींच सकता है और जिस प्रकार चाहे उस प्रकार अपने भावों को दूसरे के हृदयांकित करा सकता है।

'हाँ' कहानी में एक सुन्दरता होनी चाहिये और वह यह है कि जहाँ तक सम्भव हो अपनी कहानी के समय का सामाजिक चित्र खींचे, सुखचैन के तरीकों का नक़शा दिखाये और विशेष समय में विशेष भाव और विचारों के प्रगट करने में छिपाव व गलती न करें। यह बात सरल नहीं है बल्कि अत्यन्त कठिन है। जिस समय का यह किस्सा है उस समय राजपूतों में विशेष प्रकार के विचार थे। जिसको जहाँ मौक़ा मिला, उसने लड़ाई झगड़े, और कोशिश और परिश्रम से अपने लिये एक अलग राज्य स्थापित कर लिया। जिस समय देहली और कन्नौज की गद्दियाँ शहाबुद्दीन ग़ोरी के आक्रमणों के कारण से बरबाद हो गईं चौहान और राठौर आदि राजपूतों ने अपने स्थानों को सदैव के लिये छोड़ दिया और राजस्थान के रेगिस्तान में जाकर बस गये। संकट अपने साथ एक मुख्य प्रकार की बरकत भी लाता है और वह बरकत यह है कि अगर क़ौम में थोड़ी सी जान बाक़ी होती है तो वह फिर से जाग्रति प्राप्त करने में सर तोड़ कोशिश करती है।

राजपूतों ने पश्चिमी आक्रमण-कारियों के कष्टों से मजबूर होकर नये ढंग में अपने नये नये हौसलों को क्रियात्मक रूप में लाने की कोशिश की और वह कोशिश ऐसे ढंग से हुई कि जिस पर आज सब लोग गर्व करते हैं और अपने जातीय इतिहास का इसको सबसे बड़ा अंग समझते हैं।

भलाई और बुराई को देखकर हमको किसी की प्रशंसा या बुराई की ओर ध्यान न देना चाहिये किन्तु यह याद रखना चाहिये कि किसी विशेष मनुष्य की नीयत कैसी है। यदि नीयत की जड़ तक पहुंच कर हम किसी की सभ्यता के बारे में अपनी राय स्थिर करें तो संभव है वह राय सही और ठीक समझे जाने योग्य होगी। मनुष्य के हर एक भले और बुरे काम का पैमाना केवल उसकी नीयत हो सकती है।

इस कहानी का शाही डाकू, अपने ज़माने में बड़ा प्रण-धारी वीर हुआ है। अफसोस है कि इतिहास लेखकों ने इसके हालात इकट्ठा करने में प्रयत्न नहीं किया। फिर भी जो कहावतें पीढ़ी दर पीढ़ी से हम तक पहुंची हैं वह किसी न किसी हालत में उसके असली रंग रूप दिखाने में सहायक होती हैं और उनसे काम लेकर हम उसको अपने ढंग पर बयान करते हैं।

इसमें कोई कोई बातें ऐसी मिलेंगी जो न केवल आश्चर्य-जनक प्रतीत होंगी किन्तु लोगों को विश्वास तक न आयेगा कि जीवन में उनका प्रगट होना संभव भी हो सकता है या नहीं।

ऐसे लोगों के विश्वास के लिये हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि सम्भावना के जगत में हर वस्तु की सम्भावना है और अगर किसी कौम या किसी मनुष्य से जाग्रति की अग्नि नष्ट नहीं हुई है तो उसमें समय समय पर ऐसी घटनायें प्रगट हुआ करती हैं जो हर भले बुरे के आश्चर्य का कारण होती हैं। हमारा जिन्दादिल शाही डाकू उससे बरी नहीं हो सकता है।

—शिव

शाही डाकू

प्रथम प्रकरण

जीवन

मानुष जनम सुधार ले, करके अपना काम।
फिर यह अवसर यह समय, यह दिन नहिं यह याम॥

जीवन क्या है? खेंचतान, हाथापाई, कशमकश और इसी प्रकार के ही कृत्यों के दृश्यों का नाम जीवन है।

जहाँ बढ़ने, फैलने, ऊँचे चढ़ने और वर्तमान दशा को उन्नति देने के भाव प्रबल हों, समझलो कि वहां जीवन है और जहां इन बातों का अभाव दिखाई दे, समझलो कि जीवन के बनाने वाली सेना ने वहां से कूच कर दिया।

हमको इस संसार में जीवन क्यों मिला है? प्रकृति की इस देन का उद्देश्य यह प्रतीत होता है कि हम परिश्रम करते हुये, हाथ पांव हिलाते हुये, मन, बुद्धि और देह के अणु व परमाणुओं को गति देते और क्षण क्षण पर श्रेष्ठ बनाते हुये अपने आपमें एक प्रकार की अवस्था उत्पन्न करलें जिसको हम सुख दायक समझते हैं। वह अवस्था हमारी इच्छा या कामना का उद्देश्य है, वह हमारे मन का ध्येय है। वह हमारे भावों का अभिप्राय है। हमारे हाथ एक विशेष प्रकार का

साधन व अभ्यास करते हुये इस सीमा तक पहुँचने की आशा करते हैं। हमारे पांव चलते हुये पग पग पर इसी को इष्टपद बनाना चाहते हैं। हमारी आँखों की पुतलियाँ अपने विशेष सीमित घेरों में घूमती हुई उसके दृश्य से प्रसन्न होना चाहती हैं। हमारे कान एकाग्रता की प्रतिज्ञा करते हुये उसी के लुभाने वालों रागों को सुनना चाहते हैं। हमारी नाक सिकुड़ती और फैलती हुई इसी से सुगंधित होना चाहती है। हमको जो जिभ्या टूटे फूटे शब्दों में उद्देश्य को प्रगट करने के लिये दी गई है वह अनजाने उसी उद्देश्य की प्रशंसा करने में लगी रहती है।

यह ध्येय क्या है? यह इच्छा क्या है। इस इच्छा की जड़ में किसी इच्छित वस्तु शायद इच्छा की रूह छिपी हुई है। अफसोस! इस सवाल का जवाब स्पष्ट रूप से हम नहीं दे सकते और न व्याख्या सहित नाम रूप को वर्णन कर सकते हैं। वह दिल में है मगर जिभ्या पर नहीं आता। अन्तः करण इसके होने को मानता है मगर कोई उसे बता नहीं सकता। ज्ञानी, ध्यानी, भक्त, प्रेमी, सेवक, अभ्यासी, राजा रंक छोटे बड़े वह सबही के भीतर मौजूद हैं। रात दिन अन्दर ही अंदर वह हरकतों द्वारा कुरेदता हुआ हमको अपनी ओर खींच खींच कर लिये जा रहा है, मगर पूछने पर हम न उसे बता सकते हैं और न किसी के हृदयाँकित करा सकते हैं। वह क्या है? इस गुत्थी का हल कोई जानकार बताये। वह क्या है? इस आवश्यक और महत्व पूर्ण प्रश्न का उत्तर कोई ज्ञानी दे। मगर सबके सब चुप्पी की अवस्था में सर नीचा किये बैठे हैं। न शब्दों का भंडार पूरी तरह हाथ आता है कि हम इसको वाणी से वर्णन कर सकें, और न विचार काम देता है

कि हम चिन्तन करके इसके नाम और रूप को निश्चित कर सकें।

हम परलोक से इसी की खोज में आये हैं। हम दुनियाँ के कटीले जंगलों में इसी सुगंधित और सुवासित और सुशोभित फूल की चाह में बन उपबन में मारे मारे फिरते हैं। हम मजनू की तरह इसी लैला के प्रेम का दम अनजान रूप से भरते हुये रात दिन हैरान व परेशान रहते हैं मगर किसी को बता नहीं सकते। यह कैसा दर्द है ? यदि दर्द है तो इसका दुख, इसकी टीस, और इसकी कड़क दुखदायक नहीं है। हम ग़म खाते हैं मगर चित्त नहीं भरता। हम दुख सहते हैं मगर इसे नहीं छोड़ते। हम सर पर इसके कारण दुःखों का बोझ उठाते हुये फिरते हैं मगर सर से उस बोझ को उतारकर रखना नहीं चाहते। कठिन है, अनकहने की बात है। वह हल भी हो तो किस तरह पर हो। है कोई पूर्ण ज्ञानी और साधन सम्पन्न जो इस गुत्थी को सुलझावे। जवाब मिलता है कि कोई ऐसा समझदार और जानकार मनुष्य दृष्टि में नहीं आता। इस उत्तर के मिलने पर भी मानव समुदाय में कोई भी ऐसा आदमी दृष्टिगोचर नहीं आता जो निराश होकर उसका पीछा छोड़ दे। नहीं, नहीं कभी नहीं। कैसे संभव है कि जब तक हमारी दिली इच्छा पूरी न हो जाय हम इस अदृश्य अनसुने और अनिर्वचनीय प्रेमी के विचार को चित्त से अलग कर सकें।

ज्ञानवान लेखक गद्य की सूरत में रात दिन लिखता रहता है मगर पुस्तक लिखने की हविस को नहीं छोड़ता। उच्च विचार वाला कवि ख्याल के ऊँचे लोकों की दिन रात सैर करता हुआ सुन्दर शेरों में इसका ख्याली खाका खींचता रहता है मगर लिखने के भ्रम को त्याग देने का इच्छुक दिखाई नहीं देता। कोमल स्वभाव चित्रकार पर की कलम से तस्वीर बनाने में आसक्ति रखता है। एक के बाद दूसरी तस्वीर बनाता है मगर चित्र-

कारी और नकशा बनाने से नहीं उकताता। साहसी व्यापारी तरकीब और बुद्धिमता से व्यवहार और व्यापार करता हुआ लाखों. करोड़ों और अरबों का धन इकट्ठा कर लेता है मगर उसे भी सन्तुष्टि नहीं होती।

ज्ञानी, ध्यानी, विद्वान व पंडित आदि विद्या और बुद्धि से परिपूर्ण होने पर भी अधिक अध्ययन व निरीक्षण के काम को हाथ से नही जाने देते किन्तु विद्या और बुद्धि के चक्रों में जकड़े दिखाई देते हैं। आखिर बात क्या है ? यह अपनी हल चल को क्यों नहीं त्यागते ? हृदय स्वयं उत्तर देता रहता है कि अभी श्री गणेश है। अभी दिल्ली दूर है, चले चलो। यह अन्तरीय कुरेद तथा यह मानसिक बेचैनी उस समय तक चुप और शान्त रहने वाली नहीं है जब तक असली उपास्य देव या भगवन्त से साक्षात्कार होने का अवसर हाथ न आ जायगा। इष्टपद की ओर पग बढ़ाते रहो। आराम का नाम जिभ्या और होठ पर उस समय तक न आने पावे जब तक अन्तिम पद तक न पहुँच जाओ।

यह जीवन है। यह इस जीवन की खींचतान है। यह इसकी खींचतान का कारण है। कोई इसे क्या बताये। कोई किसी को यह भेद क्या सुनाये ? कहने वाले कह गये. सुनाने वाले सुना भी गये मगर सवाल ज्यों का त्यों ही है। पाँच बरस का बच्चा पूछता हुआ आता है। युवक उसी खोज और टटोल में पड़ा रहता है। बूढ़े बालिग़ होकर भी पीर नाबालिग़ बने रहते हैं। यह रहस्य है जिसके खुलने की कुंजी हाथ में नहीं आती और हम किसी को संतुष्ट नहीं देखते। देखें भी कैसे ? उद्देश्य तक नहीं पहुँच सके।

देखेंगे तब कहेंगे, अब कुछ कहा न जाय।
सिंधु समाना बुन्द में, दरिया लहर समाय॥

मार्ग अनेक हैं। पहुँचने का स्थान एक है। किसी ने एक राह पकड़ी है, किसी ने दूसरी। तीसरे ने तीसरी आदि आदि। यह कारण है कि यहां प्रत्येक मनुष्य के भाव विचार, बोध भान में भिन्नता है, सब अपनी अपनी राह चले जा रहे हैं। किसी की राह टेढ़ी है, किसी की सीधी है और किसी की टेढ़ी सीधी और पेचदार भी है। सीधी राह चलने वाले आसानी से पैर बढ़ाते हुये चले जा रहे हैं। टेढ़े रास्ते पर चलने वाले भूलते भटकते दुःख और कष्ट उठाते हुये अनुभवों और निरीक्षणों के बढ़ने पर अन्त में सीधी राह पर आयेंगे और तब सुगमता व सरलता के साथ अन्तिम स्थान (इष्ट पद) पर पहुँचेंगे, मगर चलते हैं। इसमें से एक भी ऐसा नहीं है जो चल न रहा हो।

"मुसाफिराने अदम ठहरो, हम भी आते हैं।
चले न जाओ खुदारा, कदम बढ़ाये हुये॥"

यह विचार, जिसकी तस्वीर हमने ऊपर शब्दों के ढांचे में खेंची है, एक नव युवक राजपूत के अंतःकरण से उत्पन्न हुये थे। वह अति सुन्दर था और अच्छे स्वभाव का था। हाथ पैर सुन्दरता के ढांचे में ढले हुये थे! हृदय युवावस्था की उमंगों से भरा हुआ! चेहरे से राजपूती बांकपन झलकता हुआ! टेढ़ी भौंहें जो उसकी कमानदारी की साक्षी देती थीं! फुरतीले हाथ जो उसकी फुरती को प्रगट करते थे! रोब दोब वाली शकल जो उसके उत्साही चित्त के भावों का स्पष्ट रूप था! उसके होठ लाल प्याले के पानी के समान थे, जिसके भीतर मीठा शरबत झलकता था और शब्दों की मीठी बूँदों में जिस समय वह बाहर निकलता था सुनने वालों को उसके पान करने से संतुष्टि नहीं होती थी।

उसने सोचा मैं जवान हूँ? जवानी दीवानी होती है। दीवाने

की भावनायें प्रबल रहती हैं। जिसका मन चंचल हो, जिसके हाथ पैर में बल हो, जिसके विचार में गति हो, जिसके हृदय में उछलता कूदता, फुदकता और फड़कता हुआ मन हो वह किस प्रकार चुप चाप बैठ सकता है। ऐसे आदमी की रोक थाम कौन कर सकता है। उमड़ता हुआ बाढ़ का जल हाथी की तरह झूमता हुआ पहाड़ों की चट्टान से चला आरहा है। किसमें सामर्थ्य है जो उसे रोक रक्खे। किस इंजिनियर का साहस है जो उसके प्रवाह को बन्ध लगा कर रोक दे। वह उस समय तक अपनी चाल को आप भी नहीं सँभाल सकता जब तक कि समुद्र की छाती उसके आराम का पलंग नहीं बन लेगी। मैं जवान हूँ। जब जवानी मिली है तो इससे काम क्यों न लूं। यह योंही तो नहीं दी गई है। इसका कुछ न कुछ उद्देश्य है और वह उद्देश्य यह है कि मैं दुनियाँ में सूर्य की तरह चमकता हुआ जगत को प्रकाशित करूँ। मेरे जीवन का यह प्रयोजन है कि मैं गंगा की शुद्ध और पवित्र धार की तरह हिमालय की बरफीली चोटियों से उतर कर बंजर और मरु भूमि को तर और गर्मी से झुलसे हुये ठंडे वृक्षों को हरा भरा करूँ। जीवित लोगों को उत्साहित करूँ और मृतक समान लोगों को नया जीवन प्रदान करूँ। अगर मैं दुनियां के सरोवर में कमल के रूप में पैदा किया गया हुँ तो मेरा कर्तव्य है कि मैं चमक दमक के साथ खिल जाऊँ ताकि लोग मेरे रङ्ग रूप को देखें। मेरी सुगंध चहुं ओर फैले, भौंरे मंडलायें, सरोवर की शोभा बढ़ै और फूल कर अपने भीतर ऐसे कमल गट्टे के फल उत्पन्न करूँ जिनसे और भी बहुत से सुन्दर और शोभायमान कमल गट्टे के फल उत्पन्न हों। मैं इस राजस्थान की रंगीली भूमि और पहाड़ी हिस्से का शेर मर्द बनाया गया हूँ। क्यों न शेर की तरह कछार में

बिचरता, अकड़ता, ऐंठता और मचलता हुआ शिकार मारूँ। आप भरा पूरा हूँ और दूसरों को भी सन्तुष्ट बनाऊँ। यदि जवानी के दिन यों ही नष्ट हो गये तो फिर बात क्या हुई। यह समय फिर हाथ न आयेगा। गया वक्त फिर हाथ नहीं आता। अवसर प्राप्त है। जवानी जीवन रूपी वाटिका की बहार की ऋतु है। सुबह की हवा के चलते ही अगणित फूल खिलते हैं। वृक्ष लहलहाते हैं। पृथ्वी की घास तक बहार देती है। पक्षी चहचहाते हैं। सुगंध की लपटें हवा के झोकों से मिलकर दूर दूर तक सबको सुगंधित करती हैं और सबके दिल और दिमाग तर हो जाते हैं। यदि मैं सच्चे अर्थों में सच्चा जवान हूं तो नवयुवकों के समान मुझे काम करना चाहिये। हाथ पर हाथ धरे हुये बैठे रहना अपाहिजों का काम है। धिक्कार है इस जवान पर और जवान की जवानी पर जो अपनी जवानी की क़दर नहीं करता और निकम्मे बूढ़ों की तरह व्यर्थ बक बक में अपना समय नष्ट करता है। जीवन काम के लिये है, बेकारी महापाप है। यह जीवन का रोग है और रोग भी बिना औषधि का। मुझे इस प्रकार का जीवन प्यारा नहीं है और न मैं सुस्त व बेकार रह सकता हूँ।

यह विचार हमारे नवयुवक के चित्त में उत्पन्न हुये। विचार बीज हैं जो उपयुक्त और उचित स्थितियों के मिलते हुये सुन्दर और ऊँचे वृक्षों के रूप में प्रगट होते हैं और अपने समय पर फल फूल लाते हैं। **याद रहे चित्त का कोई विचार उस समय तक चैन नहीं लेता जब तक वह इस व्यवहारी जगत में प्रत्यक्ष रूप में नहीं आ लेता।** यही दशा हमारे नवयुवक की भी हुई। विचार दिन व दिन पक्का होता गया,

अतः जब उसके चित्त को और कोई कार्य न हाथ आया तो वह पहाड़ों का डाकू हो गया, मगर वह किस प्रकार का डाकू था इसका वर्णन अगले प्रकरण में किया जायगा।

दूसरा प्रकरण

रायदेवा और रायबंगो

समझ समझ जो पग धरै, गिरै न भूमि मँझार।
बिन समझे कारज करै, ताका नाम बिगाड़॥

दो राजपूत बर्मौदा के दुर्ग में बैठे हुये थे। उनमें से एक गंभीर स्वभाव और अधिक आयु का था। दूसरा अभी नवयुवक था। बूढ़े का नाम रायबंगो था और नवयुवक रायदेवा कहलाता था। यह बाप और बेटे थे। बाप ने बेटे को देर तक सर से पैर तक बार २ देखा। वह चुप चाप गर्दन झुकाये हुये अदब के साथ बैठा हुआ था।

इस हालत में वह देर तक बैठे रहे। बाप बेटे से कुछ कहना चाहता था मगर मुँह खुलने से और होंठ चलने से मनें करते थे। बेटा जानना चाहता था कि बाप ने क्यों याद किया मगर उसको साहस नहीं होता था कि कुछ पूछे। उस समय के लड़के मां बाप के आदर मान का अत्यन्त ध्यान रखते थे। जब तक मां बाप स्वयं उनको याद न करें वह उनके सन्मुख बहुत कम बात चीत करते थे। यह सन्मान समझा जाता था और वह संतान भाग्यशाली समझी जाती थी जिसको बुजुर्गों के सन्मान का अधिक ध्यान हुआ करता था।

दोनों देर से बैठे हुये थे। अंत में रायबंगो ने कहा–'बेटे! मैंने तुझे कई बार कहा कि तू अपनी चालों को छोड़, मगर तूने मेरी बात नहीं सुनी।"

रायदेवा—"पिताजी ! आपने निश्चय रूप से आदेश नहीं दिया था वर्ना मुझे कभी आज्ञा उल्लंघन करने का साहस न होता। अगर आप आज्ञा दें तो मैं इसी समय आग में कूद पड़ूँ। मुझे जीवन इतना प्यारा नहीं है जितना मैं आपकी आज्ञा का ध्यान रखता हूँ।"

राय बँगो—'तू सच कहता है। इसमें मेरा ही खोट है, मगर मैं क्या करता। यदि तुझे निश्चय रूप से आज्ञा देता तो सम्भव था कि तेरा बढ़ता हुआ उत्साह दब जाता।"

राय देवा—"अब आपकी जो आज्ञा हो उसे पालन करूं।"

राय बंगो—"मैं क्या कहूँ क्या न कहूँ। मुझे कई तरह के ख्याल हैं। एक तो हाड़ों की उन्नति का ध्यान है और दूसरी ओर तेरे उत्साह और संकल्पों का ध्यान है। मैं नहीं चाहता कि हाड़ों का साहस गिर जाय। और साथ ही मुझे यह भी स्वीकार नहीं है कि तेरा दिल टूटे। मैं स्वयं बड़े उथल पुथल में पड़ा हूं।"

राय देवा—"आपको व्यर्थ का पशोपेश है। जो कुछ कहना हो बिना संकोच के कह डालिये और देखिये कि मैं आपकी आज्ञा का पालन करता हूँ या उल्लंघन करता हूं।"

राय बंगो—"धन्य बेटा ! धन्य ! तेरी भलमनसाहत इस बुढ़ापे में मेरी सच्ची खुशी का कारण है। मैं इसे दुनियां की सब दौलतों से अधिक मूल्यवान समझता हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि सच्चे अर्थों में तू हाड़ों का सच्चा सरदार सिद्ध हो और तेरा जीवन हमारे नव युवकों को माँ बाप की आज्ञा पालन और देश सेवा का उच्चकोटि का पाठ पढ़ाये।"

राय देवा—"मैं संसार के समस्त नव युवकों में सबसे अधिक भाग्यशाली हूँ। जिस लड़के के माँ बाप उस पर इतने

दयावान हों उसके भाग्य का क्या ठिकाना है। मुझे सबसे अधिक केवल आपके आशीर्वाद की आवश्यकता है और जब तक आपका आशीर्वाद मेरे साथ है किसी का भी साहस न होगा जो मेरा बाल बांका कर सके। मैं आपके इस आशीर्वाद को अपने जीवन की नींव समझता हूँ।"

राय बंगो—"वाह बेटे! वाह! अगर तू अपने आपको भाग्यशाली बेटा समझता है तो फिर मैं ऐसा बुद्धिमान पुत्र पाकर अपने आपको भाग्यशाली बाप क्यों न समझूं। तू इन निर्बल हाथों का बल है। तू मेरी धुँधली आंखों का प्रकाश है और मुझे पूर्ण आशा हो रही है कि तेरे झंडे के नीचे नव युवक हाड़े बहादुरी का सच्चा सबक सीखेंगे और जिस प्रकार कि मेवाड़ के गहलौतों ने यश प्राप्त किया है उसी प्रकार हाड़ा जाति भी किसी समय उन्नति और प्रभुता प्राप्त करेगी।"

रायदेवा—'बताइये' आपने इस समय पर मुझे किस प्रयोजन से याद किया है?"

रायबंगो ने थोड़ी देर तक सोच विचार किया। वह नहीं चाहता था कि बेटे को कोई अप्रसन्नता की खबर सुनाये मगर वह मजबूर था। मजबूरी के समय मनुष्य क्या कुछ नहीं करता। उसने अन्त में कहा—'देख बेटे! मैंने तेरे लिये जो कुछ मुझसे हो सका कर दिखाया। अपने जीवन में तुझे पटहर की सरदारी प्रदान की और आप राज काज से अलग होकर ईश्वर की भक्ति करता हूँ। अब मैं सुबह का टिमटिमाता हुआ चिराग़ हूं। मालूम नहीं किस समय मौत का संदेश आजाये और मैं संसार से चल बसूँ। मैंने हरावती के राज्य को बढ़ाया मेनाल पर अधिकार किया। इस बमौदा के पक्के दुर्ग की नींव डाली। देख! मंडलगढ़, बिजौली, बेगू, रतनगढ़ और चौरेल-

गढ़ को मैंने ही तेरे और तेरी संतान के लिये विजय किये थे। सारा पटहर अब हाड़ों के अधिकार में है।"

रायदेवा—"यह सब सच है।"

रायबंगो—"जब से तूने राजकाज सँभाला है इसकी और भी उन्नति होती चली जा रही है और शत्रुओं को भय है कि बाद में हरावती क्षेत्रफल के विचार से बहुत बढ़ जाये और वह मेवाड़ के तुल्य हो जाये। हम काँटे की तरह उनकी आंखों में खटक रहे हैं। मैंने जान-बूझ कर पहले तुझे मारवाड़ के राज में इसी कारण से काम काज सीखने के लिये भेजा था कि तू वहां जाकर जानकार हो जाय और अपने बाप के राज्य को बढ़ाने के योग्य हो। तूने वहाँ जाकर बड़ी निपुणता दिखाई। मारवाड़ का राजा तेरी वीरता और साहस की प्रशंसा करता है

जब से तू वापिस आया है मैंने तुझे राज सौंप दिया और मैं देखता हूँ कि किसी न किसी प्रकार तू मेरी आशाओं को पूरा कर रहा है। हां, कोई कोई लोग शिकायत अवश्य कर रहे हैं।"

रायदेवा की आंखें चमक उठीं। उसने होठ दाँतों के नीचे दबाये। भौंहें टेढ़ी होगई। रायबंगो को भय हुआ कि उसका दिल दुखी तो नहीं हुआ। इसलिये यह हालत देखकर उसने उसे कहा—"बेटे! मैंने तुझे इस समय बुरा भला कहने के लिये याद नहीं किया और न मेरा यह अभिप्राय है। मैंने तुझे पहले ही कह दिया है कि मैं अब संसार में केवल दिनों का मेहमान हूं। कौन जाने दो ही चार महीनों के भीतर प्राणों को यह शरीर छोड़ना पड़े। ऐसी दशा में कैसे संभव है कि मैं तुझको अप्रसन्न करूँ। आज दो महीने हुये तेरी स्त्री मरगई। उसकी मृत्यु ने मेरे चित्त पर और भी प्रभाव डाला मगर ईश्वर का धन्यवाद है कि वह तीन संतान छोड़ मरी है। और तेरे तीनों लड़के

हरराज, हरी जी और समरसी को देखकर मेरे शोक निवारण का सामान हाथ आ गया है।"

बूढ़ा इतना कह कर कुछ देर के लिये चुप हो रहा। यद्यपि वह बलवान और जिर्री राजपूत था मगर फिर भी बूढ़ा था। रायदेवा ने यह हालत देखकर कहा—"पिताजी! आप कहना कुछ चाहते हैं और कह कुछ रहे हैं। जो कुछ आपके हृदय में हो वह कहिये। मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा। निश्चित्त रहिये, यह देह आपकी प्रदान की हुई है। संभव नहीं है कि इस जीवन में मैं किसी प्रकार अपने आपको आपके क्रोध का अपराधी हो सकूँ। आप जो कहेंगे मैं हर तरह उसका पालन करूँगा।"

रायवंगो—"मैं यह जानता हूँ और जो मैं जानता हूँ उससे तुझे भी जानकारी है। पहले तू हर बात से जानकार हो लेता है तब मुझे पीछे से खबर मिलती है।"

राय देवा—"कुछ तो कहिये ताकि मैं समझ सकूं।"

राय बंगो—"शत्रुओं ने देहली के बादशाह के कान भरे हैं कि राय देवा लूट पाट करता है, और इस प्रकार हरावती के क्षेत्रफल को बढ़ा रहा है। बादशाह को भय हो गया है कि कहीं राजस्थान में मेवाड़ के पाये की दूसरी बादशाहत स्थापित न हो जाय और वह हिकमत अमली से तुझे अपने दरबार में बुलाकर अमीरों में शामिल करना चाहता है ताकि यह खटका उसे न रहे और तू बहैसियत इसके अमीर के वहाँ पड़ा रहे। यह बात सच है या नहीं?"

राय देवा हँसा। "निस्संदेह सच है, लेकिन आप बे फिक्र रहें। सिकन्दर लोदी मुझे कोई नुकसान नहीं पहुंचा सकता। दूसरी बात कि मैं डाकू प्रसिद्ध हो गया हूं उसकी बाबत आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैंने आज तक किसी ग़रीब को

नहीं सताया। न किसी की जान ली। ईश्वर ने मुझे साहसी बनाया है। मैं रात दिन महल में रहना नहीं चाहता और न राज के मामूली कारबार में ही लगे रहना मेरा काम है। अधिकतर राजस्थान के क्षेत्र में अपनी सीमा के पार डाकुओं के गिरोहों की देखभाल किया करता हूं। इसके बदले में जो कुछ मुझे उनसे मिलता है, मैं प्रसन्नता से स्वीकार कर लेता हूँ क्योंकि हरावती के कोष से सेना की तनख्वाह की पूर्त्ति नहीं होती है। मैं इस आमदनी से फौज बढ़ाया करता हूँ, और मैं इसको बुरा नहीं समझता। यदि पटहर की आमदनी काफी नहीं है तो मैं नहीं समझता कि इस ढंग पर चलने में मैं कौनसा धार्मिक या सामाजिक पाप कर रहा हूँ। यह सच है कि इस ढंग से मैं हराबती का राज्य बढ़ा रहा हूं, मगर इससे सिकन्दर लोदी मुझे रोक नहीं सकता।"

रायबंगो—"मैं जानता हूं। मुझे हर बात की जानकारी है मगर समय बुरा है। तमाम राजस्थान सिकन्दर के जासूसों से भरा हुआ है। झूंठी सच्ची खबरें उसे पहुंचती रहती हैं और विरोधी राजपूत हमसे अपना बदला लेने पर तुले हुये हैं। मुझे केवल इसी बात का भय है, क्योंकि हरावती को अब तक ऐसी शक्ति प्राप्त नहीं हुई है कि वह लोदी बादशाह का सफलता पूर्वक सामना कर सके।"

रायदेवा—"आपका यह विचार सही है। फिर आप मुझे क्या आज्ञा देते हैं?"

रायबंगो—"बेटे! तू राजा है। राजा को दूसरा आदमी आज्ञा नहीं दे सकता। सच्ची आज्ञा देने वाला संसार में राजा ही कहलाता है, हाँ, अगर तू चाहता है तो मैं तुझे राय देसकता हूं।"

रायदेवा—"फिर आपकी राय क्या है?"

रायबंगो—"सुन बेटे! राजा यद्यपि देश का मालिक कह-

लाता है मगर वास्तविक रूप से वह सबका सेवक है और उस सेवा के विचार से उसे हर एक प्रकार का निजी बलिदान या त्याग करना पड़ता है।"

रायदेवा—"मैं निजी बलिदान करने के लिये तैयार हूँ। केवल आपके आज्ञा देने की आवश्यकता है।"

रायबंगो—"क्या तू देहली जाने के लिये तैयार है ?

रायदेवा—"क्यों ?"

रायबंगो—"इस लिये कि बादशाह का शक शुबहा और भय दिल से दूर हो जाय। वहाँ अगर तू रहेगा, तो हरावती उसके आक्रमणों से सुरक्षित रहेगी और किसी विरोधी की दाल न गल सकेगी और न किसीको झूंठी खबर पहुँचाने की हिम्मत होगी। इसके अतिरिक्त तू वहाँ उसका माननीय अमीर और सेनापति भी रहेगा। बादशाह ने स्वयं बुलाया है। मेरी समझ में इस समय वहां जाने में कोई हरज नहीं है।"

राय देवा—"जिस समय से बादशाह का हुक्म आया है मैं स्वयं उसपर विचार कर रहा हूं। लेकिन मुझे स्वीकार नहीं था कि मैं स्वतन्त्रता का बलिदान करूं। इसके अतिरिक्त मैं अपने स्वभाव से विवश हूं। जो काम यहां मैं सरहद्दी इलाकों पर किया करता हूं सम्भव है कि देहली के आस पास भी करता रहूं। मुझे हरावती की फौज सुसज्जित रखने का सबसे अधिक ध्यान है और मैंने उसे बहुत सरल सा नुसखा समझ लिया है। अब चूंकि आपकी आज्ञा है, इसलिये मैंने इसी अन्तिम रूप से निर्णय कर लिया कि मैं दहली अवश्य जाऊँगा। वहाँ जाने पर काहे कोई भी परिणाम हो, मैं इसके लिये तत्पर हूं।"

राय बंगो—"ईश्वर तुझे खुश रक्खे। तू फिर कब वहाँ का इरादा रखता है ?"

राय देवा—"मेरी इच्छा यह है कि हरावती का राजा

किसी और को बना दिया जाय ताकि वह यहां के प्रबन्ध का उत्तरदाई रहे और मैं स्वतन्त्रता के साथ लोदी के दरबार में रह सकूं।"

राय बंगो ने कुछ देर सोच विचार किया। "यद्यपि मेरी नीयत इस प्रकार की भी नहीं थी कि तू हरावती का राजा न रहे लेकिन इसमें कोई हरज भी नहीं है। तू इस समाह में अपने बेटे हरराज को सिंहासन दे दे। वह हाड़ों का राजा बना रहेगा। और तू आराम से देहली रहेगा। मैं जब तक जिन्दा हूँ राज की देख भाल करता कराता रहूँगा। हां, अब मुझे आशा नहीं है कि तू वापिस आकर अपने बाप को देख सकेगा, लेकिन हरावती खुशहाल रहे, मुझे केवल इसी बात का खयाल है। हरावती की रक्षा, पोषण और कुशलता के लिये मैं अपने नेक पुत्र राय देवा तक को बलिदान कर सकता हूँ।"

बाप बेटे प्रसन्नता पूर्वक उतनी बात चीत करने के बाद अलग होगये।

तृतीय प्रकरण

रायदेवा और दुर्गावती

पानी जैसी धार है, जगका योग वियोग।
दोनों मिलकर बैठिये, नदी नाव संयोग॥

जन्म भूमि की कुशलता के विचार ने रायदेवा को जन्म भूमि के त्याग करने के लिये मजबूर किया। यदि किसी को जन्मभूमि के प्रेम का सबक सीखना हो तो राजस्थान के प्राचीन वीरों से सीखें। मातायें युद्ध क्षेत्र में अपने प्यारे बच्चों को भेजते समय कहती थीं—"तुमको हमने इसी दिन के लिये नौ महीने

तक गर्भ में रक्खा और प्रेम, परिश्रम और सावधानी से तुम्हारा पालन किया। जाओ अपने देश के नाम पर निछावर हो जाओ और अपनी माताओं के दूध की पवित्र शक्ति का खेल दुनियाँ को दिखा दो।"

बहन भाइयों के पटके से खंजर लटकाते समय साहस दिलाती थीं। "बीर! अगर वापिस आना है, तो शत्रुओं के सिर और छाती पर पैर जमाते हुये घर की ओर मुँह करना और यदि नहीं वापिस आना है तो वीरों के मृतक शरीरों के टीले पर चढ़ कर सीधे स्वर्ग को चले जाना। दोनों दशाओं में तुम्हारा एक हाथ चांदी का और दूसरा सोने का होगा।" उनकी विवाहिता युवा पत्नियाँ पतियों को विदा करते समय क्या कहती थीं? उसे भी सुनोः—

"प्राण पति! सावधान रहना। स्त्रियों के समाज में किसी को यह कहने का अवसर न मिले कि यह गीदड़ और डरपोक की स्त्री है। कलेजे पर तलवार का घाव सहना पसंद है मगर क्षत्राणी को किसी भी दशा में अपाहिज, कायर और साहस हीन पुरुष की स्त्री कहलाना स्वीकार नहीं है। मृत्यु और जीवन नेक नामी के साथ हो। यदि तुम शेर की तरह उनके कछार में बिफरते हुये शत्रुओं को मार कर स्वर्ग को चले जाओ, तब भी कोई परवाह नहीं। हम भी तुम्हारे पीछे अग्नि रूपी पवित्र विमान पर चढ़ती हुई आयेंगी और इन्द्र की अप्सराओं के साथ मिलकर स्वर्ग लोक में तुम्हारी आरती उतारेंगी।"

ऐसे पवित्र पुरुष और पवित्र देवियों के भावों ने राजस्थान को राज का स्थान बनाया था। धन्य है वह जाति जिसमें ऐसी देवियाँ उत्पन्न हुई, होती हैं या होंगी। यह सम्भव नहीं है कि वह आधीनता की दशा में सदा के लिये पड़ी रहे उन्नति और

इकबाल को किसी न किसी समय उसके पांव चूमने के लिये विवश होना पड़ेगा।

रायदेवा की स्त्री मर चुकी थी। बूढ़ी माँ ने जाते समय उसे गोद से चिपटाया। वह रणभूमि पर नहीं जा रहा था, इस लिये अधिक शिक्षा नहीं दी, मगर जब राजपूत ने माता के पवित्र चरणों को झुककर होटों से चूमा, तो वृद्धा माता की आखें भर आईं। वह बोली–"वत्स! देहली का दरबार शत्रुओं से भरा हुआ है। साबधानी से रहना। हरावती को अभी तेरी सेवा की अधिक आवश्यकता है।" भाई बिछुड़ने वाले से मिले। दो छोटे भाइयों ने कहा–"दादा! हम भी तुम्हारे साथ मुसलमानों की राजधानी चलकर देखेंगे।" एक छोटी उम्र की बहन थी जिसे रायदेवा बहुत प्यार करता था। उसने कहा–"दादा! क्या मैं तुम्हारे साथ न चलूं।" वीर राजपूत की आंखें डबडबा आईं। "नही, प्रेमविदा नहीं। तुझे बमौदा हीं में रहना होगा। दूसरी जगह लड़की का क्या काम।" वह इसके पांव से लिपट गई। मजबूरन दो भाई एक छोटी बहन और इसका दूसरा लड़का समरमी और लगभग अस्सी नव्वे राजपूत सिपाही उसके साथ हुये। राय बंगो उनको दूर तक पहुँचाने आया। बाप बेटे बिदा होते समय गले मिले और जब रायदेवा ने बाप का पाँव चूमा उसने आशीर्वाद दिया—"ईश्वर तेरी रक्षा करे और तेरी सन्तान हरावती के इतिहास में वीरता की यादगार सिद्ध हो।"

रायदेवा कूच करता हुआ उस जगह पहुंचा जहां शिवपुर बसा हुआ था। पहले यहाँ एक साधारण सा गांव था और इने गिने राजपूत उसमें रहकर खेती बाड़ी का काम करते थे। हमारा दल दोपहर के समय इस जंगली बस्ती के निकट पहुँचा। धूप तेज थी। गर्मी के कारण भूक और प्यास भी अधिक थी।

एक जगह वह वड़ के वृक्ष के नीचे आकर ठहर गया। उसके आस पास बाजरा के खेत थे। जब वह वहाँ पहुंचे और अभी कठिनता से दम लेने पाये थे कि एक ओर से जंगली सूअर आता हुआ दिखाई दिया। रायदेवा ने साथियों को इशारा किया। उन्होंने उस पर चढ़ाई की। सूअर तो बाजरा के खेतों में घुस गया मगर ऊपर से मिट्टी की गोली आई जो रायदेवा के छोटे भाई को लगी। वह उसी समय जमीन पर गिर पड़ा राजपूत बड़े आश्चर्य में पड़े। ध्यान पर्वक देखा तो एक छोटी लड़की खेत के बीच मचान पर बैठी हुई गोफन से पक्षियों को उड़ाने की नीयत से इधर उधर गोलियाँ फेंक रही थी। एक राजपूत ने उसको आवाज दी। वह मचान से नीचे उतर आई। शकल सूरत पवित्र मगर ग्रामीणों जैसा रंग ढंग! एक हाथ में गोफन और दूसरे में छुरा लिये हुये!

रायदेवा की निगाह उस पर गई। सिर से पाँव तक उसे ध्यान पूर्वक देखा। पूछा-"बाई! तू कौन है? क्या तू बनदेवी है?"

लड़की बोली—"मैं बनदेवी नहीं हूँ। तुम्हारी तरह आदमी हूँ। खेत की रखवाली करने आई हूँ और गोफन से पक्षियों को उड़ाया करती हूँ ताकि वह फसल को खराब न कर सकें।"

रायदेवा-"तेरी गोली से मेरे छोटे भाई को चोट लगी है।"

लड़की—"मुझे दुःख है। मैं ने जान बूझकर गोली नहीं चलाई, लेकिन तुम कहो तो मैं उसे अभी अच्छा करदूँ।"

रायदेवा ने स्वीकृति प्रकट की। लड़की ने उसके भाई की चोट को अपने कोमल हाथों से मल दिया और उसका दर्द उसी समय जाता रहा। इससे उसको और भी आश्चर्य हुआ। दो चार पल के बाद सूअर का पीछा करने वाले राजपूत वापिस आये और कहने लगे-"महाराज! सूअर खेत में घुस गया है। यदि आज्ञा हो तो हम खेत में घुसकर उसे ढूढ़ें।"

रायदेवा को अभी उत्तर देने का अवसर तक नहीं मिला था कि लड़की बोली–"तुम मेरे खेत में नहीं जा सकते। तुम्हारे पांव से बाजरा के पेड़ टूट टूट कर गिर पड़ेंगे। मैंने सूअर को देखा है। कहो तो उसको अभी मार लाऊँ।" राजपूतों के अचंभे की क्या सीमा थी। रायदेवा ने कहा– "बाई तू अभी अल्पायु है। सूअर तेरे बूते का नहीं है।" वह बोली–"वाह जी वाह! अगर मैं इस योग्य न होती तो यहां खेत की रखवाली कैसे करती! मैंने कितने ही सूअर मारे हैं और इसे अभी मार कर खींच लाती हूं।" रायदेवा चुप रहा। लड़की उसके उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना उसी समय खेत के अन्दर चली गई और मुर्दा सूअर की लाश को बाहर खींच लाई। अचम्भे की बात थी। एक अल्पायु लड़की से ऐसा कठिन काम कैसे हो सकता था। रायदेवा ने कहा–"बाई! क्या तूने किसी टोंना या जादू से इसे मारा है?

लड़की—"हम गाँव के रहने वाले जादू क्या जानें। मैंने बाजरा का एक पेड़ उखाड़ा। सूअर की आंखों को उससे घायल कर दिया। वह जमीन पर तड़फ कर गिरा। मैंने अपने छुरे से मार दिया। इसमें जादू का कोई काम नहीं है। मैंने बहुत बार इसी प्रकार कई सूअर मारे हैं। हिरनों को तो मैं अपने गोफन की गोलियों ही से मार गिराती हूं। मुझे तीर चलाना भी आता है और मेरा निशाना कभी खाली नहीं जाता। मेरे बाप ने मुझे तलवार चलानी भी सिखाई है। मैं नहीं समझती कि तुममें से कोई आदमी इस कला में मेरा मुकाबला कर सकेगा'।

रायदेवा हँसा—"तू सचमुच बनदेवी है, और अपनी कमान की ओर संकेत किया। कमान भारी थी। लड़की ने उसे आसानी से उठा लिया। उसी वृक्ष की चोटी पर दो पखेरू बैठे हुये थे। इसने तीर को चिल्ला से जोड़ा और वह दोनों

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

क्षण मात्र में भूमि पर आ गिरे। अब तो उन्हें और भी अचंभा हुआ। रायदेवा ने पूछा— "सुन्दरी! तू कौन है?"

लड़की—"क्या मैंने तुम्हें नहीं बताया कि मैं इसी शिवपुर गांव की लड़की हूँ। मेरा नाम दुर्गावती है। मैं कौम की गहलौत क्षत्राणी हूं।"

रायदेवा—"तेरा बाप कौन है? और उसका नाम क्या है?"

लड़की—'क्या लड़कियां अपने बाप का नाम लेती हैं? मां बाप का नाम उनकी संतान नहीं बताया करती। यह बुरा समझा जाता है। तुर्कों में बेशक यह रिवाज है। उनमें बेटे बेटी मां बाप का नाम लेते हैं।"

रायदेवा—"तू ऐसे जंगल में अकेली कैसे रहती है? क्या तुझे किसी का भय नहीं है?"

लड़की—"मुझे किसी जानवर या आदमी का डर नहीं है। मचान पर तीर कमान और खाँड़ा धरे हुये हैं। मैं उनसे काम लेना जानती हूं। मेरे पास कोई नहीं आ सकता और न मैं किसी के पास जाती हूं। तुमने बुलाया। मैंने विचार किया कि शायद कुछ पूछना होगा। इस कारण से चली आई।"

रायदेवा—"यदि तुझे कोई यहां से बलात पकड़ ले जाये तो क्या करे?"

लड़की ने इतना ही सुना था कि अपनी कमर से लपेटी हुई तलवार को जो कमर बन्द की तरह बंधी हुई थी खींचली। वह लपलपाती हुई बाहर निकली। 'किसका साहस है कि दुर्गावती को पकड़ सके। मैं क्षणभर में दो चार दस बीस आदमियों को इसी दुर्गा से जमीन पर लिटा सकती हूँ।" यह कहकर लड़की पैतरा बदल कर अलग किनारे जाकर खड़ी होगई और उनसे कहा-' तुमको कुछ पूछना नहीं है। मैं अपने मचान पर जाती हूं।"

रायदेवा—"नहीं, बाई नहीं, तू भय न कर हम लोग बुरे आदमी नहीं हैं। अभी तुमसे और कुछ पूछना है।"

लड़की—'फिर तुमने पकड़ने और डराने की बात क्यों कही ? मुझे संदेह हो गया। मुझे अकेली न समझो। यह दुर्गा हर समय मेरे साथ रहती है। मेरी तलवार का नाम दुर्गा है और यह छुरा जिससे मैंने सूअर को मारा है कभी मेरा साथ नहीं छोड़ता।"

रायदेवा—"बाई ! मैंने अपनी उम्र में तुझ जैसी शेरनी नहीं देखी। तू देवी है। जिस व्यक्ति ने तेरा नाम दुर्गावती रक्खा है, वह बहुत बड़ा विद्वान् रहा होगा।"

लड़की हँसी—"यह साधा ण स्त्री बात है। मेरे गांव की लड़कियां भी तीर मारना, तलवार चलाना और गोफन फेंकना जानती हैं। ब प ने बचपन से मुझे यह सब बातें सिखाई हैं। इनके सिवा मैं घोड़े की सवारी खूब जानती हूँ और कभी २ बाप के साथ बीस बीस पच्चीस पच्चीस कोस का धावा मारती हूं। मेरी घोड़ी बहुत दमदार है। गाँव के किसी लड़के को इसकी पीठ पर बैठने की हिम्मत नहीं होती। वह घर पर बंधी है। तुम देखते तो कहते।"

रायदेवा--"देखा ! मेरा घोड़ा भी बहुत चंचल और चालाक है। मेरे सिवा किसी को अपनी जीन पर नहीं बैठने देता।"

लड़की ने उस घोड़े को देखा। "बेशक यह भी असली ज्ञात होता है। क्या तुम उसे बेचोगे ? यदि बेचो तो संभव है कि पिता जी उसे खरीदलें। उनको घोड़ों का बहुत शौक है। मेरे घर में इस समय तीन घोड़े और एक मेरी घोड़ी है।"

रायदेवा मुसकराया-"बाई ! मैं घोड़ों का सौदागर नहीं हूँ।"

लड़की-"फिर तुम कौन हो ?"

रायदेवा--'मैं राजपूत हूँ।"

लड़की – "यह तो साधारण बात है। यहां सब ही राजपूत हैं। तुम हो कौन ? और कहां जा रहे हो ?"

रायदेवा— 'मैं बमौदा से आ रहा हूँ और देहली जा रहा हूं।"

लड़की—' बमौदा में तो रायदेवा जी राज करते हैं। क्या तुम उनको जानते हो ?"

रायदेवा—"हाँ बाई ! मैं रायदेवा को जानता हूँ। क्या तुझे उनसे कुछ काम है ?"

लड़की—"मुझे तो काम नहीं है। पिताजी प्रायः रायदेवा का नाम लिया करते हैं। कभी कभी हमारे घर में उनकी लूट पाट की चर्चा हुआ करती है। अचंभा है कि वह राजपूत हो कर डाका मारते हैं, नहीं तो मैं उनकी वीरता के हालात को सुनकर बहुत प्रसन्न होती हूँ। क्या तुम बता सकते हो कि राय देवा किस प्रकार के आदमी हैं ?"

रायदेवा—"उनकी शकल सूरत मुझ जैसी है और लम्बी दाढ़ी है, लेकिन जो लोग उन्हें डाकू कहते हैं वह गलती पर हैं।"

लड़की—' तुम झूठ कहते हो। मैं तुम्हारी बात को सही समझूं या पिताजी की बात को। पिताजी कभी झूंठ नहीं बोलते।"

रायदेवा फिर हँसा—"तेरे पिता को असल हाल ज्ञात नहीं है।"

लड़की— 'मैं ऐसा कैसे समझूं ! अच्छा ! अब मैं जाती हूं। पखेरू फसल को नुकसान पहुँचा रहे होंगे।"

यह कह कर वह लड़की उसी समय चल खड़ी हुई और खेत के मचान पर चढ़ कर गोफन की गोलियों से पक्षी उड़ाने लगी।'

चतुर्थ प्रकरण

रायदेवा और बीसलदेव

देश भक्ति गुरु भक्ति का, इच्छुक सब संसार।
भक्ति प्रेम निष्फल सभी, जो न विवेक विचार॥

राहगीरों ने थोड़ी देर वहां आराम किया। खाने पीने से निवृत हुये। जब दोपहर ढल गया, चलने के लिये तैयार हुये। इतने में देखते क्या हैं कि एक बूढ़ा सफेद दाढ़ी वाला आदमी आरहा है। यह उसकी प्रतीक्षा में ठहर गये। वह आया, राम राम कहने के बाद पूछा-"अपनी लड़की दुर्गावती से मैंने अभी सुना है कि रायदेवा के मिलने वाले यहां उतरे हैं। क्या आप लोग वही आदमी हैं ?"

रायदेवा —"तुम्हारा विचार सही है। हम वही लोग हैं, क्या आपको रायदेवा से कुछ काम है ?"

राजपूत—"मेरा नाम बीसलदेव है। मैं रतनगढ़ का सरदार हूँ। पठानों ने मेरा दुर्ग छीन लिया। मुझे किसी से सहायता नहीं मिली। तमाम साथी लड़ लड़कर मारे गये हैं। मैं स्वयं बूढ़ा हूँ। यद्यपि अब भी मुझे लड़ने का साहस है, मगर अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता। मुझे बहुत दिनों से रायदेवा से मिलने की इच्छा है।"

रायदेवा—"मिलने का प्रयोजन ?"

बीसलदेव—"जब तक मुझे यह न ज्ञात हो जाय कि मैं किससे बातचीत कर रहा हूँ तब तक किस प्रकार अपना मन्तव्य कहूं। फिर भी एक तरह मैंने बिना समझे बूझे अपना विचार प्रगट भी कर दिया है।"

रायदेवा—"क्या तुमने कभी रायदेवा को देखा है ?"

बीसलदेव—"नहीं, मगर मैं कुछ दिनों बमौदा में रह चुका हूं। पटहर के इलाकों की चप्पा चप्पा ज़मीन से मुझे जानकारी है। मैं रायबंगो से मिला हूँ। इधर बहुत दिनों से मुझे बमौदा जाने का अवसर नहीं हुआ, बरसों बीत गये, मैंने रायदेवा के हालात सुन रक्खे हैं, वह पहले मारवाड़ की फौज के सिपह-सालार थे। मारवाड़ के राजा के लिये कई स्थानों पर विजय प्राप्त की। जब वहाँ से चले आये तो बमौदा के राज को अपनी बहादुरी से बहुत कुछ बढ़ा लिया और मुझे विश्वास हो गया है कि वह मेरा काम कर सकेंगे। यह उनसे मिलने की गरज़ है।"

रायदेवा—"क्या तुमको मालूम नहीं है कि रायदेवा अब बमौदा में नहीं हैं?"

बीसलदेव—"मुझे नहीं मालूम कि वह कहां चले गये और कब चले गये।"

रायदेवा—"उन्हें बमौदा छोड़े अधिक समय नहीं हुआ लेकिन अगर तुम अपना मन्तव्य कहो तो मैं तुम्हारा संदेसा उनके पास पहुँचा सकता हूं, परन्तु इस बात का विश्वास नहीं दिला सकता कि वह कहां तक तुम्हारे काम आ सकते हैं।"

बीसलदेव—"तुमने यह नहीं बताया कि रायदेवा कहाँ गये और तुम कौन हो? यदि मुझे यह मालूम हो जाय तो मैं तुमसे अपना प्रयोजन प्रगट कर दूँ। कई दिनों से सोच रहा था कि मैं बमौदा चला जाऊँ और उनसे मिलकर अपना हाल कहूं, लेकिन अच्छा हुआ कि तुम मेरे गाँव में आगये और मुझे मालूम होगया कि वह वहाँ नहीं हैं। अब बमौदा जाना व्यर्थ है।"

रायदेवा—"मैं रायदेवा का भाई हूं। रायदेवा को सिकंदर लोदी ने देहली बुला भेजा है और हम सब लोग भी वहाँ जा रहे हैं।"

बीसलदेव चौकन्ना हो गया। सिकन्दरलोदी बड़ा होशियार राजा है। उसने कुछ सोच समझकर रायदेवा को बुला भेजा है। मेरे पास भी इसका संदेशा आया था। बादशाह ने कहला भेजा था कि अगर मैं देहली चला जाऊँ तो वह मुझे कोई बहुत बड़ा पद देगा। उसने और भी वाइदे किये हैं।"

रायदेवा—"तुमने सिकन्दर लोदी को होशियार कैसे समझा ?"

बीसलदेव—"यह पुरानी कहानी है। तुम सुनो, शहाबुद्दीन ने जिस समय पृथ्वीराज चौहान को हरा दिया, देहली का राज अपने गुलाम कुतुबुद्दीन को दिया। गुलाम वंश में कई बादशाह हुये, मगर फिर भी देश में मुसलमानों का आधिपत्य नहीं हुआ और हिन्दू राजों ने किसी न किसी भाँति फिर भी अपनी स्वतन्त्रता स्थिर रक्खी। इसके बाद तुगलक वंश राज करने लगा। वह भी हिन्दुओं को आधीन नहीं कर सका। फिर खिलजी आये, सैय्यद आये, मगर किसी की दाल नहीं गली। मुसलमानों का राज यद्यपि इस देश में स्थापित तो हो गया मगर इनकी इमारत की नींव बालू पर है। नहीं मालूम कि कब वह इमारत धम से फिसल पड़े और फिर हिन्दू पहले की तरह अपने राज्य को संभाल लें। सिकन्दर चाहता है कि मुसलमानों का राज स्थायी रूप से इस देश में जम जाय और वह रात दिन इसी चिन्ता में रहता है।"

रायदेवा—'यह तो सब राजे चाहते हैं। यह कोई नई बात नहीं है और न इसमें कोई बहुत बड़ी होशियारी ही है।'

बीसलदेव—'तुमने ऐतिहासिक घटनाओं पर ध्यान नहीं दिया, अन्यथा ऐसा न कहते। अब तक जितने मुसलमान बादशाह हुये, वह हिंदुओं से घृणा ही करते रहे। यह घृणा हिंदुओं के लिये लाभदायक सिद्ध हुई, और वह मुसलमानों के साथ

दूध में मीठे की तरह नहीं मिल सके। पक्षपाती तो सिकन्दर लोदी भी है मगर वह बड़ा दूरदर्शी और प्रयत्नशील भी है।"

रायदेवा—"किस तरह पर ?"

बीसलदेव—"सिकन्दर ने अब हिन्दुओं को कूट नीति से अपनी ओर आकर्षित करना चाहा है। उनमें झगड़े और शत्रुता पैदा कर रहा है। साथ ही जिनको वह अपना बनाना चाहता है, उनकी सहायता भी बहुत कुछ कर रहा है। दूसरे भय है कि समस्त देश में कहीं उसका आधिपत्य न हो जाये।"

रायदेवा—"उसने किन हिन्दुओं को अपनी ओर आकर्षित किया और किस किस नीति से काम लिया ?"

बीसलदेव—"क्या तुम नहीं जानते कि मेंना कौम के लोगों ने लालच में आकर अपने धर्म तक को छोड़ दिया। कितने राजपूत जागीर, राज और पद प्राप्ति के लालच में अपना धर्म बेच बैठे। अब उसने रायदेवा को भी इसी गरज से बुलाया होगा और मुझे देहली आने का सँदेशा दे रहा है।"

रायदेवा—"क्या तुमको विश्वास है कि रायदेवा भी इन अज्ञानियों की तरह मुसलमान हो जायगा ? क्या तुम स्वयं इस बुढ़ापे में अपने बाप दादों के धर्म को छोड़ बैठोगे ?"

बीसलदेव—"राम राम ! मेरा यह विचार नहीं है। न रायदेवा जैसा वीर कभी विधर्मी हो सकता है, और न बीसलदेव किसी लालच में पड़कर धर्म बदल सकता है मगर सिकंदर की चालाकियाँ विचित्र रूप से काम कर रही हैं।"

रायदेवा—"मैं भी तो सुनूं कि वह क्या हैं ?"

बीसलदेव—"राजकुमार मैं क्या कहूँ, 'दीवार के भी कान होते हैं' वाला विषय है।"

रायदेवा—"आप घबरायें नहीं ! यहाँ हमारे साथ सब सच्चे राजपूत हैं। हम सब लोग चाहे हाड़ा कहलाते हैं, मगर

असल में हम चौहान हैं। चौहान कभी कोई अनुचित चाल नहीं चलता। विश्वास रक्खो कि मैं सब प्रकार रायदेवा को विवश करूँगा कि तुम्हारे मनोरथ को पूरा करदे। तुम बताओ कि सिकन्दर अब क्या चाल खेल रहा है।"

बीसलदेव— 'सिकन्दर ने भले प्रकार समझ लिया है कि जब तक हिन्दू मुसलमानों में मेल जोल न होगा, प्रलय तक मुसलमानों का राज इस देश में कायम होने वाला नहीं है। उसने पंजाब के खत्रियों को लोभ दे दे कर अपने बन्धन में बांध लिया है और वे ऐसे अनसमझ निकले कि इनके पास अपनी कोई जागीर तक नहीं रही। सब कुछ खो बैठे, अब उसने कायस्थों को अपने जाल में फांस लिया है। कायस्थ सदा से इस देश में राजाओं के अहलकार थे। सिकन्दर ने उनको फ़ारसी पढ़ने का शौक़ दिलाया। ऊँची ऊँची पदवी दी और इस प्रकार हिन्दू राज्य के एक बहुत बड़े दल को अपनी ओर कर लिया। इस बादशाह से पहले कोई हिन्दू फारसी नहीं पढ़ता था। सबको सौगंध थी कि कभी कोई यवन भाषा न सीखें। जब थोड़े से कायस्थ उनके जाल में आगये, हिन्दुओं की सब कौमों ने उनको अपने बीच से अलग कर दिया। वह अप्रतिष्ठित और अपमानित हुये। उनकी स्त्रियों ने पुरुषों के हाथ का खाना पीना तक त्याग रक्खा है। ब्राह्मणों ने बहुत सा प्रयत्न किया कि ये बादशाह के जाल में न फँसें, मगर इनकी एक जाति जिसे भटनागर कहते हैं धोखा खागई। यह फारसी पढ़कर शाही अहलकार बना लिये गये। जब बादशाह ने देखा कि जाति उनसे घृणा करती है, उनके रहने सहने के लिये देहली के पास एक शहर सिकन्दराबाद बसाया और आस पास चारों ओर की जमीन जायदाद और जागीर उन्हीं को देदी। ये लोग सबके सब अब उसी शहर में बसते हैं और बादशाह अपनी

आवश्यकता के अनुसार उनमें से अद्दलकारी के योग्य आदमी छांट लेता है। क्या तुम इसको छोटी बात कहोगे।"

रायदेवा—"नहीं छोटी नहीं है। यह बहुत बड़ी बात है। हिन्दुओं में सचमुच फूट डालदी गई और सिकन्दर के प्रयत्न अधिक सीमा तक सफलीभूत कहे जा सकते हैं। क्या इसके सिवाय और भी कोई बात है?"

बीसलदेव—"उसने ब्राह्मणों को भी बहका कर गाँठ लिया, और वेदों के भागों में अल्लाह[1] और मुहम्मद तक के नाम प्रवेश करा दिये।"

रायदेवा—"अफ़सोस! यह बहुत बुरी चाल है। तुम बताओ मैं रायदेवा को क्या संदेशा दूँ।"

बीसलदेव—"मैं क्या कहूँ! जब से मैंने सुना है कि रायदेवा देहली गये, स्वयं मेरे कान खड़े होगये। किसका भरोसा किया जावे और किसका न किया जाय। समय जोखिम का है। कोई बात समझ में नहीं आती। मैं सोचता हूँ। जब रायदेवा स्वयं देहली गये, तो मैं भी क्यों न देहली चला जाऊँ।"

रायदेवा—"यह तो तुमको अधिकार है परन्तु अभी तक मैंने तुम्हारी गरज नहीं सुनी।"

बीसलदेव—मेरी गरज यह है कि मैं रतनगढ़ को मुसलमान पठानों के हाथ से छुड़ाना चाहता हूँ। अगर तुम रायदेवा से मिलो तो यह संदेसा उनको मेरी ओर से दे दो। उनसे

---

(१) यह मिलावट उपनिषदों में है। एक उपनिषद जिसका नाम अल्ब उपनिषद् या अल्लाह उपनिषद है, उसमें अल्लाह और मुहम्मद के नाम लिखे हैं। लोगों का ख्याल है कि यह काम अकबर ने किया है मगर यह गलत है। इसका सम्बन्ध सिकन्दर से है।

हो सके तो वह मेरी सहायता करें।"

रायदेवा—"परन्तु क्या मैं पूछ सकता हूँ कि इस सेवा और परिश्रम के बदले में तुम रायदेवा की आधीनता स्वीकार कर लोगे ?"

बीसलदेव—"राम राम! कढ़ाई से निकलकर कौन मछली आग में गिरना चाहेगी! इसी डर से तो मैं अभी देहली नहीं गया वर्ना सिकन्दरलोदी अवश्य मेरा दुर्ग पठानों से मुझे दिला देता। 'हां', मैं रायदेवा की कृतज्ञता अवश्य जीते जी मानूँगा और उसको ऐसा बहुमूल्य रत्न दूँगा जिसे पाकर वह प्रसन्न हो जायगा।"

रायदेवा—"वह क्या है ?"

बीसलदेव—"वह मेरी लड़की दुर्गावती है, जिसके समान इस समय दुनियाँ में सुन्दरता व शील स्वाभाव के दृष्टिकोण से दूसरी दिखाई नहीं आती। वह केवल सुन्दर ही नहीं है बल्कि जो गुण राजपुत्रियों में होने चाहिये सब उसमें कूट-कूट कर भरे हैं।"

रायदेवा हँसा—'रायदेवा इस रत्न का निस्संदेह बड़ा भारी मान करेगा और क्या आश्चर्य कि वह रतनगढ़ के वापिस दिलाने में सरतोड़ प्रयत्न भी करे! मैं तुम्हारी लड़की के खेल अपनी आंखों से देख चुका हूँ।"

बीसलदेव—"मुझे भी यह आशा है और मैंने यह प्रण किया है कि जो आदमी मुझे भले या बुरे ढँग से रतनगढ़ को वापिस दिला देगा, मैं अपनी लड़की को केवल उसी को दूँगा और नहीं वह जीवन भर कुमारी रहेगी और कुमारी ही मरैगी। यह मैंने पक्का प्रण कर लिया है।"

रायदेवा ने बीसलदेव को सांत्वना दी। चूँकि बात-चीत

में अधिक समय बीत गया था, वे उस रात्रि को उसी वृक्ष के नीचे ठहरे और दूसरे दिन प्रातः ही देहली की ओर चले गये।

पंचम प्रकरण

रायदेवा और सिकन्दरलोदी

अपनी अपनी सब कहें, सुनें न और की बात।
निज स्वारथ के कारनें, करे बहुत उत्पात॥

मन चले राजपूतों का दल कूंच दर कूंच करता हुआ देहली पहुंचा। ये बेचारे जंगली पहाड़ी और रेगिस्तानी थे। इन निर्धनों को राजस्थान में पानी के लिये भी स्वयं परिश्रम करना पड़ता था। मकान बनाने के लिये बड़ी कठिनाइयों से पत्थर और लकड़ी इकट्ठा करनी पड़ती थी और रेतीली भूमि को बड़ी कठिनाइयों से जोत कर बाजरा उत्पन्न करना पड़ता था। उनको सुखचैन कहां! ये राजपूत थे। राज के पुत्र कहलाते हैं। राज क्या है? किसी वस्तु पर विजय पाना और उसको अपने अधिकार में कर लेना राज है। संसार में वह व्यक्ति धन्य है जिसको कठिनाइयों, दुःखों और आवश्यकताओं का सामना करना पड़ता रहता है, क्योंकि उसके हाथ पांव, मन और बुद्धि में स्फूर्ति रहती है। वह आदमी जो देह के आराम की चाह में पड़कर अपने आपको अपाहिज बना लेता है, उसको जीवन का आनन्द नहीं मिलता। उससे कहो दुनियाँ से जल्दी डेरा लेकर चले। यहां अपाहिजों का काम नहीं है।

राजपूतों ने पहिली बार अपने जीवन में दिल्ली को देखा। दिल्ली क्या थी? मुसलमान जब से इस देश में आये, इसे शुरू ही से पृथ्वी का स्वर्ग कहते आये। सुन्दर शहर लम्बी चौड़ी इमारतें

आकाश से ऊँची मीनार ! आराम पसन्द निवासी ! चाट के शौकीन पुरुष स्त्री ! अच्छे रंग ढंग और अच्छी वाणी बोलने वाले लोग ! कोई अपनी भाषा पर गर्वित, कोई अपने यश का अभिमानी ! किसी को जीविका के साधन का घमंड ! मुसलमान कवि तो देहली को सदा अच्छी दृष्टि से देखने के आदी थे मगर हिन्दू सदा से उसको जगत की अस्थिरता का पाठ पढ़ाने वाला माननीय स्थान समझते रहे हैं। राजा दिल्लो ने दिल्ली बसाई और अभी उसकी नींव पर पक्की इमारत भी नहीं बनने पाई थी कि राजा ने उसे खुदवा डाली। कहा जाता है कि एक ज्योतिषी ने नींव डालने की घड़ी अच्छी बताई थी। जब बुनियादी खम्भ जमीन में गाड़ा गया, उसने कहा कि बुनियादी लोहे का खंभ शेष नाग के सिर पर स्थिर हुआ है। राजा को विश्वास नहीं आया। उसे उखाड़ कर देखा तो वह सच मुच खून में सना था और पोली पृथ्वी से खून की धार भी बह निकली। राजा ने फिर नींव रक्खी, मगर ज्योतिषी ने कहा कि अब वैसी घड़ी नहीं आयेगी और दिल्ली सदा जमती, उखड़ती और बनती बिगड़ती रहेगी और इतिहास इस सचाई की सैकड़ों बातों से साक्षी दे रहा है।

रायदेवा ने देहली को देखा। मन में नाना प्रकार के विचार उत्पन्न हुये। दिल्ली से हृदय से प्रार्थना की—"भाई ! रायदेवा को अधिक दिनों तक यहाँ न रखना। ऐसा न हो कि इसके प्रयत्न और परिश्रम करने वाले लोहा रूपी हृदय को सुस्ती और आलस्य रूपी जंग खाजाय।"

सिकन्दर को आशा नहीं थी कि रायदेवा जैसा स्वतन्त्रता प्रिय राजपूत दिल्ली की ओर रुझान करेगा। वह तो किसी और ही चिन्ता में था। माननीय करनल टाडा अपने अविनाशी 'राजस्थान' नामी घटनाओं में लिखता है—"सिकन्दर को

भय था कि कहीं ऐसा न हो कि मेवाड़ जैसा साहसी और पराक्रमी दूसरा राज राजस्थान में उठ खड़ा हो।" वह बहाना ढूंढ़ता था। नीयत यह थी कि अगर हाड़ा सरदार पटहर का प्रसिद्ध डाकू बुलाये जाने पर देहली न आवे तो उसकी जड़ उखाड़ दी जावे मगर ईश्वर को कुछ और ही स्वीकार था।

हरावती को अपने पेट से एक ऐसी वीर संतान उत्पन्न करनी थी जो मेवाड़ के गहलौतों को भी अपनी वीरता से नीचा दिखाने वाली थी।

इतिहास पढ़ने वाले जानते हैं कि इस हाड़ा वंश के राजपूतों की हड्डियों में किस प्रकार के धैर्य और बहादुरी का चूना और लोहा कूट कूटकर भरा गया है। पुरुष और स्त्री दोनों ही शेर जैसे भाव रखते हैं। संसार की कोई जाति चाहे वह कोई क्यों न हो, अब तक वीरता की ऐसी जीती जागती और बोलती चालती सूरतें उत्पन्न नहीं कर सकी है। धैर्य और दृढ़ता में अद्वितीय, प्रण की पक्की, देश प्रेममें निराली! सिकन्दर को फिर भी अधिक प्रसन्नता हुई। जो बला भविष्य के भय का कारण हो रही थी बड़ी सुगमता से टल गई। राजपूतों के एक भयङ्कर दल ने उसकी अधीनता स्वीकार करली। अब और क्या चाहिये। मेहमानों को मेहमान भवन में ठहराया गया। उनके आदर सत्कार का ध्यान रक्खा गया। वह समय पर दरबार में उपस्थित किया गया।

रायदेवा ने झुक कर नमस्कार किया। वर्षों के मारवाड़ के सेनापति रहने से इसको नमस्कार करने की टेव पड़ गई थीं। सिकन्दर प्रसन्न हुआ। जब किसी अभिमानी का सिर किसी के सम्मान करने में झुके तो उसे प्रसन्नता क्यों न हो। उसने हंस कर और मुसकरा कर रायदेवा का नमस्कार लिया। हरा-

वती की कुशलता पूछी। रायबंगो की कुशलता और हाल पूछा और हमारे शाही डाकू ने टूटी फूटी मेवाड़ी भाषा में इसकी कृपा का धन्यवाद दिया। बादशाह ने उसे राजसी पोशाक प्रदान की। उसको पंज सहस्री दर्जे का माननीय स्थान दिया और अपने अमीरों में प्रधान बनाया। रायदेवा ने फिर उसको धन्यवाद दिया। लेकिन क्या वह अपने हृदय में बादशाह की कृपाओं से प्रसन्न था ?

इसका उत्तर हम क्या दें। जब स्वतन्त्रता प्रिय पक्षी तक को चारों ओर से खुले हुये पिंजड़े का अन्न जल अच्छा नहीं लगता तो कछार का विचरने वाला शेर कब सोने चाँदी के घरों में रहना चाहेगा। मगर समय और प्रकार का था और आने वाला समय कुछ और ही था। उसने भी प्रत्यक्ष रूप में प्रसन्नता प्रगट की और समझदारी और बुद्धिमानी के पैराये में राजी बरजा रह कर बादशाह को अपनी ओर से सन्तुष्ट कर दिया।

सिकन्दर ने कहा—"रायदेवा ! मैं तुम्हारे आने से बहुत प्रसन्न हुआ हूं।"

रायदेवा—"यह सरकार की कृपा है।"

सिकन्दर—"तुम जानते हो मैंने तुमको क्यों बुलाया है?"

रायदेवा—"मेरा मान बढ़ाने के लिये, क्योंकि सूर्य्य की महत्ता कण कण के प्रकाशित करने में है और बादशाह की महत्ता दीनों के प्रतिपालन में है। संसार में बादशाह ईश्वर रूप कहलाता है।"

सिकन्दर—"अगर तुम्हारे जैसे बांके सूरमा मुझे पहले मिले होते तो यह भेदभाव जो देश में दिखाई देते हैं उनका नाम व निशान भी न होता।"

रायदेवा—"जब फूल खिल कर अपने होठ रूपी कली को

खोलता है तो चहकते हुये बुलबुल उसके होठों के मिलने का संदेशा समझ कर प्राण न्यौछावर करने के लिये उपस्थित होते हैं। जब रात को दीपक का प्रकाश प्रकाशमान होता है और अपने प्रकाश की धार को बाहर फेंकता है, मोहित हुये पतंगे स्वयं उसके चहुंओर फिरने के लिये उपस्थित होजाते हैं। कंवल खिला नहीं कि भौंरे मंडलाने लगे। प्रातःकाल हुआ नहीं कि जीवधारी जाग्रत हुये नहीं। हुजूर ने याद किया और जीवन निछावर करने वाला प्राण निछावर के कर्त्तव्य पालन के लिये उपस्थित हो गया।"

सिकन्दर हँसा—"तुम तो कवियों की सी मन बुद्धि रखते हो। यह बात चीत करने का ढँग तुमने कहां से सीखा? राजस्थान की शिखर भूमि से इस प्रकार की आशा नहीं की जा सकती।"

रायदेवा—"यह केवल हुजूर के क्षणमात्र की संगत की कृपा है। लोहा पारस से छूजाने पर खरा सोना बन जाता है। गंदे नदी नालों का पानी गंगा के जल से मिलकर शुद्ध और पवित्र कहलाने लगता है।"

सिकन्दर यद्यपि प्रयत्नशील और बुद्धिमान बादशाह अवश्य था, मगर पक्षपाती भी था। हिन्दुओं के धार्मिक शब्दों के सुनने से उसे घृणा थी। एक बार बनारस में एक निर्दोष ब्राह्मण ने इतना ही कहा था कि हिन्दू और मुसलमान दोनों का धर्म सच्चा है तो बादशाह ने उसकी जबान खिचवाली थी। इस समय पर चाहे गंगाजल के नाम सुनने से उसे घृणा हुई हो, मगर वह स्वयं शांत रहा। उपमा और अलंकार में किसी प्रकार की गलती नहीं थी। उसने हँसकर पूछा—"तुमने मेरे प्रश्न का उत्तर अबतक नहीं दिया। मैंने पूछा था कि तुम क्यों बुलाये गये हो।"

रायदेवा को बीसलदेव की बात याद आई। उत्तर दिया—"हुजूर! अपनी हिन्दू और मुसलमान प्रजा को आप एक दृष्टि से देखते हैं और यह हुजूर की दिली इच्छा है कि चाहे धार्मिक भेद भाव का ख्याल रहे मगर जातीयता की दृष्टि से दोनों जातियाँ आपस में मिल जुलकर एक हो रहें।"

सिकन्दर—"वाह राजपूत वाह! तुम्हारी बुद्धि पहुँची है। तुम मेरी नीयत को समझ गये! मेरा यही विचार है और मैं प्रयत्न कर रहा हूं कि यह दोनों बिखरे हुये लोग आपस में मिलकर एक हो जांय। यदि राजपूतों का समुदाय मेरे साथ हो जाये तो मैं कुल संसार को विजय कर सकता हूँ और सिकन्दर की तरह विश्व का विजयी हो सकता हूं।"

रायदेवा—"ईश्वर ने हुजूर को सिकन्दर ही बनाया है। जैसा नाम वैसा काम! इसमें संदेह ही क्या है।"

सिकन्दर—'क्या अच्छा होता कि और राजपूत भी तुम्हारे से विचार के होते तो शासन की कठिनाइयां क्षण मात्र में नष्ट हो जाती, मगर अफ़सोस कि राजस्थान के सब सरदार इस प्रकार के नहीं हैं।"

रायदेवा 'तमाम बातें समय पर ही निर्भर होती हैं। हुजूर से पहिले किसी और बादशाह के मांस्तष्क में भी तो यह विचार नहीं उत्पन्न हुआ था। अब हुजूर का ध्यान हुआ है। सम्भव है वह शीघ्र प्रत्यक्ष हो जाय।"

सिकन्दर—'निस्संदेह विचार में बड़ी शक्ति होती है। इधर मेरे चित्त में यह विचार बैठ गया, उधर प्रकृति की व्यवस्था में वही तमाशे दिखाई देने लगे। मैं अभी बनारस से आया हूँ। वहाँ एक मुसलमान फकीर पैदा हुये हैं जिनका नाम कबीर साहब है। वह अल्ला अल्ला के बदले राम राम कहते हैं और हिन्दू और मुसलमान दोनों उनके इस ढंग के विरुद्ध थे।

मैंने उनको बुलाया। नाना प्रकार से उन की परीक्षा की, कष्ट दिये कि यदि वे मुसलमान हैं तो मुसलमानी धर्म पर स्थिर रहें, मगर मेरी कोई पेश नहीं गई। अंत में मैंने लाचार होकर उनको स्वतंत्र कर दिया। हिन्दू और मुसलमान दोनों उनके शिष्य हैं। मुसलमान उनको पीर और हिन्दू उनको गुरु कहते हैं। मैंने अपनी तमाम उम्र में ऐसा महान् पुरुष नही देखा। कबीर ने अपने व्यवहारिक ढंग से मुझे भी अपना विश्वासी बना लिया और धीरे धीरे मैं इस परिणाम पर पहुँचा कि जब महात्मा धार्मिक व्यवस्था में हिन्दू और मुसलमान दोनों को शामिल कर सकते हैं, तो क्या कारण है कि मैं राज्य व्यवस्था में मुसलमानों के साथ एक ही शिकंजे में हिन्दुओं को भी न जकड़ दूँ।"

रायदेवा—"हुजूर का विचार बहुत ही नेक है और देश इस विचार को बड़े मान की दृष्टि से देखेगा।"

सिकन्दर—"तुम ऐसा समझते हो?"

रायदेवा—"हुजूर मेरा ऐसा ही विचार है।"

सिकन्दर—"बहुत अच्छा! मैं फिर तुम से इस मामले में कभी कभी सलाह लिया करूँगा। तुम्हारे साथ और भी तुम्हारे संबंधी आये हैं या तुम अकेले आये हो।"

रायदेवा—"मेरा एक लड़का और दो छोटे भाई भी साथ आये हैं ताकि हुजूर की छत्रछाया में परवरिश पायें और एक छोटी बहिन है।"

सिकन्दर—चित्त में प्रसन्न हुआ और समझ गया कि रायदेवा देहली में स्थायी रूप से रहन सहन करने व शाही व्यवहार का लाभ उठाने के लिये आया है। उसने बेटे और दोनों छोटे भाइयों को बुलाया। उनको भी पोशाकें दी। छोटी बहिन के लिये अनोखे तोफे और गहने व वस्त्र भेजे, क्योंकि

वह दरबार में नहीं आ सकती थी।"

इसके बाद वह मेहमान भवन में चला गया। कुछ दिनों बाद उसने देहली में अपना विशेष महल तैयार कराया और अपने कुटुम्ब के साथ उसमें रहने लगा। मगर चंचल चित्त को शान्ति कहाँ। जब कभी लड़ाई होती, वह बादशाह की ओर से संग्राम पर भेजा जाता, मगर शान्ति के दिनों में वह किसी और उधेड़ बुन में रहता था। जो काम हरावती में करता था शाही इलाके में रहकर भी उसने उसे नहीं छोड़ा।

सिकन्दर को कभी कभी इसके रंग ढंग से सूचित किया जाता था मगर चूँकि रायदेवा की सेवायें रणभूमि पर अधिक मूल्यवान सिद्ध हो चुकी थीं। और वह किसी और ही ताक में रहता था वह उसकी गति विधियों की जानबूझ कर टाल टूल करता रहा। व्यर्थ की छेड़ छाड़ नीति के विरुद्ध थी। इसके अतिरिक्त वह रायदेवा को राजपूतों को आधीन बनाने का औज़ार बनाना चाहता था। कहावत प्रसिद्ध है–"दुधारी गाय की दो लातें भी सही जाती हैं।' चूँकि रायदेवा स्वयं भी सतर्क रहता था, उसको अवसर तक नहीं मिला कि वह इसके साथ किसी प्रकार की बाधा करे।

छठा प्रकरण

रायदेवा और जन्मभूमि की याद

हमतो देश के भक्त हैं, देश हमें है प्यारा।
तन मन धन सब देश पर, दिन दिन पल पल वारा॥

किसी को क्या मालूम है कि रायदेवा ने किस प्रकार का बलिदान किया था। जन्म भूमि से वह निकाला गया। यद्यपि

उसे देश निकाले का दंड नहीं दिया गया था। बाप ने केवल देहली जाने की आज्ञा दी थी, मगर सच्चे राजपूत ने समझ लिया था कि वह घर से अलग हो गया। यदि इसका लड़का इसकी जगह गद्दी पर न बैठाया गया होता तो यह विचार इसके चित्त में न उत्पन्न हुआ होता। उसने समझ लिया कि अब जन्मभूमि में लौटकर आना और आकर रहना कठिन है। मां ने मिलते समय कहा था कि हरावती को अभी तेरी सेवाओं की आवश्यकता है। "मगर उसने उसका अर्थ यह समझा कि वह हरावती से दूर रहकर उसे सहायता देता रहे।" और इसमें उसने किसी प्रकार की कमी भी नहीं की थी। हर साल देहली से काफी तादाद में रुपया और सामान हरावती पहुँचाता रहा और हाड़ों का राज्य न केवल बढ़ता गया किन्तु उनकी सेना हर समय सजी हुई रहती थी।

रायदेवा को प्रत्यक्ष रूप में बमौदा से अब कोई संबंध नहीं रहा था, मगर घर की याद कभी कभी चित्त को सताती रहती थी। वह कौन आदमी है जिसको देश प्रेम नहीं है देश की मिट्टी दूसरे देशों की कस्तूरी से अत्यन्त सुगंधित होती है। देश की मिट्टी और देशों की कीमती वस्तुओं से अधिक प्यारी लगती है। इसका पता उस समय लगता है जब मनुष्य अपने देश को छोड़कर किसी दूसरे देश में जाकर बस जाता है।

बरसों बीत गये। रायबंगो शरीर त्याग चुके थे। रायदेवा की माता का भी स्वर्गवास हो गया। रावदेवा को हरावती के समाचार समय समय पर मिलते रहे। इसको देश की याद अधिकतर सताती भी रहती थी मगर मन में सहन शक्ति थी। उसने भूलकर भी कभी हरावती लौटकर जाने का संकल्प नहीं किया। जब रायबंगो के अधिक बीमार होने का हाल मिला, बादशाह ने रायदेवा को कहा "यदि जी चाहे तो तुम

अपने घर हो आओ, बापको देख आओ, मगर उसने इन्कार कर दिया। बादशाह अपने मन में न केवल प्रसन्न और अचंभित हुआ किन्तु अपने मन ही मन में इस भोली भाली जाति के विश्वास और सादा चलन पर हँसा।

संभव है कि हमारे पाठक भी इस राजपूती विश्वास को अनुचित भ्रम समझें। हम स्वयं न इसका पक्षपात करते हैं न विरोध। दुनियां की कोई जाति ऐसी नहीं है जिसमें कोई न कोई भ्रम मौजूद न हो। इन सबकी अपेक्षा में राजपूतों के विश्वास पूर्ण भ्रमों की पाबन्दी फिर भी हज़ारहा दर्जा आदर मान के योग्य है। पुराने राजपूतों का स्वभाव था कि वह (१) अपने देश के विरुद्ध तलवार नहीं उठाते थे और इस विशेषता में हाड़ा राजपूत सबसे शिरोमणि समझे जाते थे, (२) जो कोई इनकी शरण में आगया, फिर किसी की शक्ति नहीं थी कि उसको हानि पहुंचा सके। इस एक मनुष्य के बचाने में सहस्रों राजपूत कटकट कर मर जाँयगे मगर अपने शरणागत को कभी किसीके अर्पण न करेंगे। पाकिस्तान के पठान, राजस्थान के राजपूत और काबुल के अफ़ग़ान, ऐसा ज्ञात होता है कि एक ही वंश के हैं। इतिहास भी किसी सीमा तक उनको एक वंशज होने का पता देता है। (३) राजपूत अपने घोड़े और तलवार को विश्वासपात्र से विश्वासपात्र मित्र तक को भी कभी नहीं देते थे। रायदेवा में भी यह सब बातें थीं।

रायदेवा देहली में अपने साथियों सहित प्रत्यक्ष में यद्यपि प्रसन्न था मगर वह प्रसन्नता इस प्रकार की नहीं थी जो उसके चित्त को सन्तुष्ट रखती। वह घर को जाना चाहता था, मगर प्रण को नहीं तोड़ सकता था। एक बार उसके दोनों भाइयों ने कहा—"क्या अब कभी हरावती न चलेंगे?" उसने उत्तर दिया—'नहीं! देश से निकाले हुये राजपूत को देश को लौट

जाने का कोई अधिकार नहीं है।" बहिन ने विनती की—"मुझे तो कम से कम एकबार वहां हो आने दीजिये।" यह मुस्कराया। "तू हाड़ा जाति की स्त्री होकर हाड़ा जाति के रस्म रिवाज से अनजान है। जो दांत मुख से बाहर निकल आया, वह फिर भीतर नहीं जा सकता। जो राजपूत अपने देश से निकला, फिर वह उधर को मुंह नहीं कर सकता।" बेचारी लड़की चुप हो रही। ये सब के सब घर को याद करके तड़पते थे। घर का प्रेम रायदेवा को भी कभी कभी बहुत बेचैन कर देता था, मगर यह स्वयं चुप रहता था। आखिर कबतक वह इस भाव को रोक सकता था। इंसान का मन बड़ा विचित्र है। जब इसके अन्दर किसी विशेष प्रकार का विचार उत्पन्न होता है, वह उस समय तक उसे बेचैन रखता है जब तक क्रियात्मक रूप से उसके प्रत्यक्ष होने का खेल आंखों के सामने नहीं आ जाता। प्रायः प्रकृति स्वयं जीवात्मा को गति देने वाली बनकर उभारती रहती है, और इसके प्रत्यक्ष होने में सहायक हो जाती है।

हरावती के पास कीकरी नाम का एक दुर्ग था। यहाँ पठानों का अधिकार था। यद्यपि वह संख्या में बहुत कम थे, मगर वह अपने आपको देहली की अधीनता से स्वतन्त्र समझते थे। राजस्थान में इस समय और भी कई एक स्थान ऐसे थे जिन पर मुसलमान विजयी हो गये थे। चूंकि वह राजपूतों के राज्यों के बीच स्थित थे उनको विशेष प्रकार की हैसियत प्राप्त थी। इधर मुसलमान समझ कर उन्हें राजपूत नहीं छेड़ते थे, उधर देहली का बादशाह तो यह विचार रखता था कि ऐसा न हो उनपर आक्रमण करने के कारण से राजपूतों में जोश आजाय। पठान इस तरह दोनों पक्षों से लाभ उठा रहे थे।

बादशाह की इच्छा थी कि रायदेवा को उनके विजय करने का साधन बनाया जाये। उसने उसे बुलाया। यह आया। बाद-

शाह ने कहा—"मैं चाहता हूं कि तुम कीकरी जाकर पठानों पर विजय प्राप्त करो और चूंकि अब तुमको हरावती से कोई संबंध नहीं रहा है काम करके वापिस आओ।"

रायदेवा यह आज्ञा सुनकर चित्त में प्रसन्न हुआ। जन्म भूमि के दुबारा देखने की इच्छा की उमङ्ग फिर से उत्पन्न हो गई। वह जानता था—"हरावती में पैर रखने की शपथ है मगर उसके आसपास जाने में कोई हानि भी नहीं है।" उसने कीकरी जाने पर स्वीकृति प्रगट की, और बादशाह ने काफी सेना उसके साथ करदी।

सप्तम प्रकरण

रायदेवा और रतनगढ़ का दुर्ग

गगन दमामा बाजिया, पड़ी निशाने चोट।
कायर भागे कुछ नहीं, सूरा भागें खोट॥ (कबीर)

कीकरी को राजपूतों ने लड़कर विजय किया। पठान घिर गये। रसद का किले के अंदर पहुंचना कठिन होगया। जीवन की आशा न रही, मगर फिर भी शाही आधीनता में आने के लिये उद्यत नहीं थे। रायदेवा ने अन्त तक सुरंग से काम लिया। जगह जगह किले की दीवारें फट गईं। जब पठानों ने देखा कि अब बचने की कोई सूरत बाकी नहीं रही है, फाटक का दरवाजा खोल दिया। बाहर निकले और सब एक एक करके मारे गये। एक आदमी भी इनमें ऐसा नहीं निकला जिसने भाग कर जान बचाई हो या शरण का शब्द जिभ्या पर लाया हो।

रायदेवा स्वयं सूरमा था। एक सूरमा दूसरे सूरमा का

मान करता है। जिस समय उसने पठानों की इस वीरता को देखा, उसको न केवल आश्चर्य ही हुआ किन्तु अफसोस हुआ। उसने समझा कि व्यर्थ ऐसी कीमती जानें नष्ट की गईं। यदि पहिले से ज्ञात होता तो कूटनीति से काम लेकर इनको और तरह अपना साथी बना लिया होता। मगर जो कुछ होना था, हो चुका अब पछताना व्यर्थ है। कीकरी के किले को एक राजपूत के सुपुर्द कर दिया और बादशाह को लिखा कि कीकरी पर शाही सेना का अधिकार हो गया। कीकरी साधारण किला था, तो भी सिकन्दर ने प्रसन्न होकर रायदेवा को खिलत और पुरस्कार भेजे और दरबार में लौट कर आने की आज्ञा दी।

मगर यह किसी और ही धुन में था, वीसलदेव की प्रार्थना, रतनगढ़ के दुर्ग के जीतने का संकल्प और दुर्गावती की सुन्दरता और वीरता के कार्य इस तरह के नहीं थे कि जिनको वह सरलता से भूल जाता। उसने सिकन्दर को प्रार्थना पत्र लिख भेजा कि "हुजूर! कुछ दिनों इस सेवक को राजस्थान में और रहने की आज्ञा प्रदान करें।" सिकन्दर को यह स्वीकार नहीं था। वह चाहता था कि रायदेवा राजस्थान से दूर दूर रहे मगर उस समय रायदेवा राजस्थान में आगया था। उसने विवश होकर आज्ञा दी—"अच्छा कुछ दिनोंके बाद लौटकर आजाओ।" रायदेवा ने इस अवसर को गनीमत समझा, और इस चिन्ता में हुआ कि रतनगढ़ को इस प्रकार हाथ में लाना चाहिये कि व्यर्थ रक्तपात न हो और पठान आधीन भी हो जायें और उन के गिरोह को दोनों ओर की भलाई का साधन बना लिया जावे।

हिन्दू मुसलमान यद्यपि उस समय धार्मिक भेद भाव की दृष्टि से अलग २ अवश्य थे, लेकिन परस्पर पक्षपात और शत्रता जो आजकल देखने में आती है, उसकी दशा कुछ और

ही थी। मुसलमानों में नया जीवन था, नया जीवन अपने साथ नये भाव नई उमंगें, और नये साहसों को रखता है। राजपूत यद्यपि आपस की फूट के शिकार बन रहे थे, फिर भी वह जीवन के उन लक्षणों से जो किसी जीवित रहने वाली जाति का गुण है, बंचित नहीं हो गये थे। जब कभी जान पर खेलने वाले और बहादुर मुसलमानों का वीर और जान पर खेलने वाले राजपूतों का साथ हो जाता था दोनों मिल जुलकर बहादुरी और साहस के वह खेल दिखाते थे कि दुनियां देखकर दंग रह जाती थी। पठान चाहे लाख पक्षपाती रहे हों, मगर बहादुरी की कदर करते थे और राजपूत यद्यपि हिन्दू थे मगर उस नई और नौजवान उभरती हुई कौम के प्रणधारियों को कभी घृणा की दृष्टि से नहीं देखते थे। राजपूतों का बहुत से समय पठानों के साथ मिल जुलकर शत्रुओं के विरुद्ध लड़ाई के मोर्चों में सम्मिलित होना साधारण बात थी। इसी तरह उस समय बहुत से बुद्धिमान और बहादुर राजपूत थे जो अपने साथ मुसलमान सिपाहियों को रखना और उनको अपनी सफलता का साधन बनाना आवश्यक और उचित समझते थे। वीरता सच्चे आदमियों का आभूषण है और यह वह गुण है जो शत्रु तक को अपना गिरवीदा बना लेता है। अगर हम हिन्दुओं के उन कौमी इतिहासों के गीतों को ध्यान से सुनें जिनके गानेकी अब तक हिन्दुस्तान के किसी किसी सूबे में प्रथा है तो हमको आसानी से पता लग जायगा कि इस प्रकार का मेल कम नहीं था, किन्तु उस समय भी यह मेलजोल साधारण सा था। आल्हा ऊदल की सेना में हम सैयदों को देखते हैं, जिनको राजपूत आमतौर पर चाचा कहते थे। वह राजपूतों के लिये सेना के सरदार होकर तमाम उम्र लड़ते रहे, और इस प्रकार के कार्य किये, जो हमको आश्चर्य से दांतों

में अँगुली दबाने के लिये विवश करते हैं। आल्हा ऊदल आदि सूरमा जो पृथ्वीराज चौहान के प्रतिद्वन्दी थे, बादशाह शहाबुद्दीन ग़ोरी के आक्रमणों से बहुत दिनों पहिले हिन्दू मुसलमानों के इस प्रकार मेल मिलाप का उदाहरण स्थापित कर चुके थे। इसी प्रकार इसके बाद के समय में टोंक के अमीरखां की सेना में उसी प्रकार के ऐतिहासिक सन्धियों का पता लगता है। न केवल राजपूत ही मुसलमानों को असली शक्ति का अंग बनाने की धुन में थे किन्तु मुसलमान बादशाह स्वयं इच्छुक रहते थे कि उनके रिसाले राजपूतों से खाली न रहें। यह आपस का मिलाप शुरू ही से ऐसा ही चला आता है। मालूम नहीं इस समय क्यों पश्चिमी शिक्षा से लाभान्वित होने पर भी हिन्दू व मुसलमानों के बीच परस्पर अप्रसन्नता और विरोध इतना बढ़ा हुआ है। रायदेवा ने अवसर पाकर सोच विचार के बाद रतनगढ़ के किले की ओर कूच किया। वह किला नहीं किन्तु वह एक गढ़ी थी। वह पहाड़ी की चोटी पर बनी हुई थी और प्राकृतिक रूप से दृढ़ थी। उसकी एक ओर चम्बल नदी बहती थी। दूसरी तीसरी ओर जंगल थे। चौथी ओर से आने जाने का रास्ता था। तोप आदि का रिवाज अवश्य होगया था, मगर वह आम नहीं था। दीवारों में जगह जगह पर बंदूकों के चलाने के लिये छेद बने थे, और जमीन के धरातल से वह गढ़ी इतनी ऊँची थी कि उस तक लोगों का पहुँचना कठिन था। पहाड़ी ढालू थी। इस पर चढ़ना सहज नहीं था। ऊपर यदि दस बीस साहसी आदमी बैठे हों तो नीचे के सैकड़ों आदमियों के गिरोह को केवल पत्थरों की मार से ही भगा सकते थे। गढ़ी के भीतर तालाब था और खेत भी बहुत से थे। अन्न का बहुत बड़ा भंडार रहता था। बीसलदेव के पूर्वज बहुत दिनों से उस पर काबिज चले आते

थे और वह इस गढ़ी को इतनी सुरक्षित समझते थे कि उसमें रहकर दुश्मनों को निर्भय होकर ललकारते थे। किसी को साहस नहीं होता था कि उनको स्वतंत्रता की संपदा से बंचित कर सके। समय की बात कि पठानों ने बीसलदेव को पराजित कर दिया। वह किस प्रकार अपने पूर्वजों के स्थान से बंचित हुआ, इसका पता हमको नहीं है। रायदेवा की इच्छा हुई कि वह बीसलदेव से मिलकर किले की मजबूती और कमजोरी की जानकारी प्राप्त करे मगर उसने इसे अपनी शान के विरुद्ध समझा और अपने आदमियों ही से सहायता लेकर आवश्यक जानकारी प्राप्त की। जब उसे भली प्रकार ज्ञात हो गया तो उसने केवल तीनसौ राजपूत साथ लिये। चंबल नदीके किनारे वाली दीवर को आक्रमण करने के लिये उपयुक्त समझा। दीवारें बहुत ऊँची थीं। नदी भी साथ ही वहां बहुत गहरी थी। किसको साहस हो सकता था कि नदी को पार करके दीवारों पर चढ़ सके और जान जोखिम में डाले। पठानों ने इसी कारण से उस ओर की सफील को अधिक मजबूत नहीं कर रक्खा था। उनकी सारी शक्ति सदर फाटक के दोनों ओर की दीवारों तक अधिकतर सीमित थी।

रायदेवा ने पहले कई दिन इधर उधर घूम फिर कर रास्तों का पता लगाया। इसी क्रम में उसे ज्ञात भी होगया कि पठान गाफिल हैं और उनकी इस गफलत से लाभ उठाने को बहुत गनीमत समझा।

रात का समय था। वह चंबल के किनारे दूसरी ओर से आया। जब अधिक रात बीत गई उसने समझ लिया कि सब गफ़लत की नींद में चूर होंगे। रस्सी डालकर धीरे धीरे अपने कुल हथियार बन्द आदमियों को उसने सफील पर चढ़ा लिया। किसी पहरेदार को उनके आने की आहट मिली।

उसने चाहा कि शोर मचादे। रायदेवा के आदमियों ने उसका मुँह बन्द करके हाथ पांव बाँधकर एक ओर डाल दिया। इसी तरह उन्होंने औरों के साथ भी वर्ताव किया और हथियार खाने के पहरेदारों को काबू में करके उसपर राजपूतों को नियत कर दिया। पठान मानो सो रहे थे या इक्के दुक्के शराब पीने में लगे हुये थे। यह हाथ में भाला लिये हुये अपने आदमियों के साथ क़िले दार के निवास पर गया। दरवाजा खुला हुआ था। क़िलेदार भी शराब पी रहा था। दस बीस आदमी नशे की हालत में में उसके इधर उधर थे। राजपूत निर्भयता से कमरे के अन्दर चले गये। क़िलेदार समझता था कि अपने ही आदमी होंगे। इस कारण से उस ओर रुझान नहीं किया।

रायदेवा ने उससे कहा—"तुम्हारा किला तुम्हारे हाथ से छिन गया। पहरेदार सबके सब गिरफ्तार कर लिये गये। अब तुम जिस प्रकार कहो उसी प्रकार हम तुम्हारे साथ वर्ताव करें।"

क़िलेदार ने सर उठाया।" तुम कौन हो और यह क्या कहते हो ?" रायदेवा ने उत्तर दिया "मैं रायदेवा पटहर का सरदार हूं। वीसलदेव के कहने पर यह किला मैंने इस आसानी से ले लिया है।"

किलेदार—"रायदेवा ! रायदेवा तो पटहर का सरदार है और इसको हरावती से सदैव के लिये हटा दिया गया और वह देहली चला गया। तुम कैसे रायदेवा हो ?"

रायदेवा—"यह सवाल जवाब का समय नहीं है। मैं ही रायदेवा हूँ। अभी तक मैंने तुम्हारे एक आदमी को भी क़त्ल नहीं किया। अब भी मेरा इरादा तुम में से किसी को कष्ट देने का नहीं है। क़िला तो तुम्हारे हाथ से गया। हाँ, अगर तुम मेरी आधीनता पर राजी हो तो मैं प्रसन्नता से तुम्हारे साथ अच्छा बर्ताव करने को उद्यत हूँ।"

किलेदार—"अफ़सोस ! हम अपनी भूल से आप पराजित हुये। हमें आशा नहीं थी कि कोई आदमी इधर आने का साहस कर सकेगा। खैर ! जो कुछ होना था हो गया, लेकिन पठानों के कान आधीनता के शब्दों को सुनना नहीं चाहते।"

रायदेवा—तुमने सुन रक्खा होगा कि मुझे रक्तपात से घृणा है। मैं नहीं चाहता कि तुमको कष्ट पहुंचाऊँ। मैं सुन चुका हूँ कि तुम वीर बहादुर हो। मैं तुमसे कभी छेड़ छाड़ तक न करता, मगर बीसलदेव की बेबसी और बेकसी ने मुझे विवश कर दिया।"

किलेदार—"क्यों न हो ! तुम स्वयं बहादुर हो और हमने पटहर के शेर के हालात सुन लिये हैं, लेकिन इस सवाल का जवाब दो कि तुम हमारे साथ किस प्रकार का व्यवहार करना चाहते हो।"

रायदेवा—"जिस प्रकार मित्र मित्रों के साथ वर्ताव करते हैं।"

किलेदार—"वह क्या ?"

रायदेवा—"रायदेव के बारह भाई हैं। तुम उसके तेरहवें भाई होकर रहोगे।"

किलेदार—नशे में मस्त था मगर होश हवास ठीक थे। उठा। हाथ बढ़ाया—"तुम्हारी बातें बादशाहों के जागीर और पुरस्कार के लोभ दिलाने वाले वायदों से अधिक कदर करने योग्य हैं। मुझे तुम्हारी मित्रता स्वीकार है।"

रायदेवा ने उससे हाथ मिलाया, मगर सतर्क था कि कहीं स्वयं गफलत का शिकार न हो जाये। ऐसे अवसर पर धोके का बहुत बड़ा डर रहता है।

किलेदार—"आज से मुझे तुम्हारे छोटे भाई होने का गौरव प्राप्त है। तुम बताओ कि छोटे भाई के साथ तुम्हारा क्या बर्ताव होगा ?"

रायदेवा—"रतनगढ़ का किला तो बीसलदेव को दे दिया जायगा लेकिन मेरा छोटा भाई आज से मेरा बांहुबल होगा। रायदेवा ने आज तक अपने किसी भाई को बुरे बर्ताव व अविश्वास की भी शिकायत का अवसर नहीं दिया। अगर एक क़िला गया तो दूसरा मिल सकेगा और भाई भाई मिलकर संसार में बहुत बड़ा काम कर सकेंगे।"

क़िलेदार का नाम हसनखाँ था। उसने उसी समय अपने आदमियों को कहला भेजा कि तमाम हथियार उतार कर रायदेवा के सामने रखदो। उन्होंने ऐसा ही किया। क़िले पर राजपूतों का पहरा हो गया और रायदेवा का छोटा भाई भीम उसी समय तक के लिये उसका रक्षक नियत कर दिया गया जब तक बीसलदेव वापिस आकर उस पर अधिकार न करले। सुनने में आश्चर्य ज्ञात होता है कि कुछ ही घंटों के भीतर ऐसे चमत्कार का होना किस तरह सम्भव है मगर सच्चे और नेक आदमी क्या नहीं कर सकते! बातचीत में रात बीत गई। दूसरे दिन कुल पठान किले से बाहर निकल गये। रायदेवा ने जंगल में जाकर अपने डेरे में उनकी मेहमानदारी की रस्म की। उनको अपना नमकख्वार बनाया। पठान नमक का बहुत पास करते हैं। रायदेवा ने उनका क्या प्रबन्ध किया इसकी बाबत हमारी जानकारी अधूरी है, लेकिन ऐसा मालूम होता है कि उन पठानों ने उसका जीवन भर बहुत कुछ साथ दिया था। यह इनसे अलग होकर शिवपुर आया। बीसलदेव के बारे में खबर मिली कि वह देहली चला गया। लाचार यह भी देहली की ओर चल दिया।

आठवाँ प्रकरण

बीसलदेव और दुर्गावती

अँखियां तो धुँधली भई, पन्थ निहार निहार।
जिभ्या तो छाले पड़े, नाम पुकार पुकार ॥ कबीर ॥

आशा और इन्तजार दोनों का मेल है। जब तक आदमी को किसी बात की आशा रहती है तब तक वह प्रतीक्षा भी किया करता है, मगर जब आशा की जड़ कटने लगती है प्रतीक्षा का भी अन्त हो जाता है।

बीसलदेव को आशा थी कि रायदेवा का भाई उसे अवश्य रतनगढ़ पर अधिकार दिलाने की ओर रुझान करेगा। वह जानता था कि जीवन का कोई भरोसा नहीं। बेचारे के कोई लड़का न था। कंगाली में मित्र और सम्बन्धियों ने भी साथ छोड़ दिया था। वह साधारण जमीदारों की हालत में शिवपुर में पड़ा था इसका सहारा केवल इसकी लड़की थी और वह उस लड़की के साहस सौन्दर्य और बहादुरी पर इतना गर्वित था कि उसे पूर्ण आशा थी कि कोई न कोई उत्साही राजपूत उसके चाहने वाला होगा। और उसे बहुमूल्य रत्न समझकर रतनगढ़ के लिये जान जोखम में डालना स्वीकार कर लेगा। उसे पूर्वजों की जायदाद पर अधिकार प्राप्त हो जायगा वह अब तक इसी आशा के सहारे जीता था।

दुर्गावती स्वयं इतनी साहसी और चंचल थी कि इसका हाल सुनकर अधिकतर आदमियों को संदेह हो गया था कि साधारण आदमी इसके साथ शादी नहीं कर सकता। कुछों ने तो बीसलदेव को यहां तक कह दिया था–"न नौ मन तेल होगा

न राधा नाचेगी. मगर बीसलदेव की आशा ऐसी निराशा-जनक बातों से फिसलती नहीं थी।

उसने कई साल बमौदा के सरदार की वापिसी का इन्तजार किया. मगर वह नहीं आया। लड़की भी वयस्क हो चली थी। उसने सोचा-"या तो रायदेवा ने रतनगढ़ के वास्ते शत्रुओं से झगड़ा मोल लेना पसंद नहीं किया या उसने दुर्गावती को बिलकुल साधारण स्त्री समझ लिया है। हर चीज की कीमत केवल समय और अवसर पर मिलती है। जब समय चला जाता है, फिर कोई न उसका गाहक होता है और न इतनी कीमत लगाई जाती है। अभी समय है। अच्छा है कि इसी समय मौका तलाश किया जावे। अगर किसी राजपूत से सहायता नहीं मिलती तो क्या कारण है कि स्वयं बादशाह से सहायता की प्रार्थना न की जावे। बाप की जायदाद को इस प्रकार हाथ से खोना हद दर्जे की अपकीर्ति और अपमान है। पठान कमजोर हैं लोदियों को पठानों के नाम से चिढ़ है। बादशाह अवश्य इस मेरी साधारण प्रार्थना को प्रेम के कानों से सुनेगा। इसके सिवाय इसने मुझे दरबार में मान देने का वायदा भी किया है। जब और प्रकार काम नहीं निकलता तो इसे न खोना चाहिये।"

यह सोचकर उसने एक दिन अपनी लड़की से कहा-"बाई! अब मैंने देहली जाने का इरादा कर लिया है।" दुर्गावती बाप के विचार और संकल्प से अनजान नहीं थी। वह जानती थी कि इसकी क्या इच्छा है। वह अब स्वयं समझदार हो गई थी। जान गई कि बाप इसे देहली के बाजार में ले जाकर बेचना चाहता है और कीमत वही रतनगढ़ का किला है। लेकिन यह विषय इस प्रकार का था कि न खुले शब्दों में कभी बीसलदेव ने उससे कुछ कहा और न उसे पूछने का साहस हुआ। बाप के

लिये लड़की से राय लेना अपना अपमान कराना है और लड़की का बोलना उसके लिये बड़ी लज्जा की बात है। अब तक यहाँ के हिन्दुओं में इसी प्रकार का रिवाज है. मगर दुर्गावती और प्रकार की लड़की थी। वह केवल बलवान, साहसी और सुन्दर नहीं थी, किन्तु विशेष प्रकार की हृदय और बुद्धि रखती थी। उसने बीसलदेव की बात ध्यान से सुनी। समझने सोचने के बाद बोली–'पिताजी ! देहली जाने में आपने क्या मसहलत सोची है?'

बीसलदेव ने जवाब दिया—"कई साल से मैं यहाँ रतनगढ़ के वापिस पाने की आशा में पड़ा हुआ हूँ। अब तक कोई युक्ति दिखाई नहीं दी। बमौदा के सरदार को भी मेरा ध्यान नहीं हुआ। कौन जाने मेरा संदेशा पहुँचा भी है या नहीं! आदमी तो वह बड़ा वीर और सूरमा है और वीर जैसे भावों वाला है मगर मेरी कोई हैसियत नहीं रही है। दीनों की सहायता कौन करता है। शायद अब वह न आयेगा। फिर मेरे जीवन के दिन पूरे होने को हैं। अधिक देर तक मैं अब इन्तजार नहीं कर सकता। वहाँ कई प्रकार के साधन निकल आयेंगे। बादशाह ने मुझे मंसबदारी देने का वायदा किया था। मैं वहाँ क्यों न चला जाऊँ ?"

दुर्गावती—"वहाँ क्या साधन उत्पन्न होंगे ?"

बीसलदेव—"आजकल कई राजपूत बादशाह के दरबार में रहते हैं। वीरसिंह बुंदेले ने उसकी आधीनता स्वीकार कर ली है। संबर के राजा का भाई उमरावसिंह वहाँ रहता है और अब हरावती का सर्दार रायदेवा भी पहुंच गया है। दूसरे क्षत्री भी वहाँ चले गये हैं। मैं इनमें से किसी न किसी को अपना हमदर्द बना लूंगा।"

दुर्गावती—"लेकिन उनमें से अगर किसी ने आपकी सहायता नहीं की तो ?"

बीसलदेव--"तब मैं स्वयँ बादशाह से सहायता की प्रार्थना करूँगा।"

दुर्गावती—"संभव है कि बादशाह भी आपके लिये पठानों के साथ लड़ना पसंद न करें। बादशाह बहुत समझदार होते हैं। नीच ऊँच को समझ कर तब कोई काम करते हैं।"

बीसलदेव ने लड़की को ध्यान पूर्वक देखा। उसे आशा नहीं थी कि लड़की इस प्रकार की बातों की समझ रखती है। उसने कहा—"उपाय करना मेरा काम है और सफलता देना ईश्वर का काम है। इसके सिवाय मैं और क्या कह सकता हूं।"

दुर्गावती—"देहली का जाना खटके से खाली नहीं है। मैंने सुना है कि काशी के राजपूत ज़मीन और जागीर के लालच में आकर मुसलमान हो गये। वहाँ पर धर्म से गिर जाने का भी भय रहता है।"

बीसलदेव हँसा—'मैं इस उम्र में विधर्मी नहीं हो सकता।"

दुर्गावती—"मैं उसे जानती हूं, लेकिन इस प्रकार के और भी कई खटके हैं।"

बीसलदेव—"जैसे ?"

दुर्गावती—"जैसे मैं आपकी लड़की हूँ। मुसलमान बादशाह नियम बद्ध नहीं होते। क्या मेरे देहली ले जाने में आप को किसी खटके का भय नहीं है ?"

बीसलदेव-"मैंने अपनी लड़की को शिक्षा ऐसे ढंग पर दी है कि वह अपनी रक्षा आप कर सकती है। अब वह मेरी सहायता के अधिक आधीन नहीं रही है।"

दुर्गावती बाप के अन्तिम शब्दों को सुन कर दिल में बहुत प्रसन्न हुई। उसे अपनी बहादुरी और साहस का ज्ञान था और उस विद्या पर उसे गर्व भी था। उसने कहा—"अगर आप ने देहली जाने का अन्तिस रूप से निर्णय कर लिया है, तो अच्छी

बात है। चलिये, लेकिन साथ में कम से कम कई आदमियों का रहना आवश्यक है। रास्ते के खटके कम नहीं हैं।"

बीसलदेव—"पांच दस आदमी तो अवश्य ही साथ चलेंगे। इससे अधिक आदमी इकट्ठे करने मेरी शक्ति से बाहर हैं।"

दुर्गावती—"फिर कब चलने का विचार है ?"

बीसलदेव—"शीघ्रातिशीघ्र। अब मैं देर न करूँगा।"

नवाँ प्रकरण

बीसलदेव और उमरावसिंह

बगुला हंसा एक सँग, मान सरोवर मांहि।
हंसा तो मोती चुने, बगुला मछरी खाँहि॥ कबीर

मरता क्या न करता। बीसलदेव दुर्गावती को लेकर चल खड़ा हुआ। दो घोड़ों पर दुर्गावती और बीसलदेव सवार हुये और आठ की पीठों पर आठ नव युवक राजपूतों ने जीनें कसीं जवान राजपूत स्वभावतः चंचल होते थे। प्रकृति ने एक विशेष दात इनको दे रक्खी थी। सुनसान जंगलों में रास्ता तै करना देशों को जीतना, मित्रता करना, सहायता देना, सैर करना, विद्या प्राप्त करने और राज्य करने की उत्कंठा साधारण रूप से सब में पाई जाती थी। यह देहली देखने और शाही दरबार में पहुँचने के अवसर की खोज में थे। बीसलदेव ने उनको अपने साथ लिया। मंजिलें तै करते हुये यह भी माधोपुर में पहुँचे, जो इस समय संबर के राज का एक गाँव था। देखते क्या हैं कि कई सौ आदमियों ने डेरे डाल रक्खे हैं। पूछने पर ज्ञात हुआ कि संबर का सरदार उमरावसिंह देहली जा रहा है। बीसलदेव सुनकर प्रसन्न हुआ। साथियों से कहा—"शकुन

अच्छा हुआ। उमरावसिंह से मिल लें। यह आसानी से बादशाह से मिला देगा और मेरा काम बन जायेगा।" सबने इस सलाह को मान लिया। दुर्गावती के मुख से निकल गया-"यह मछवाहा है। मछवाहे से सदैव चौकन्ना रहना चाहिये।" मगर किसी ने इन शब्दों की ओर ध्यान नहीं दिया। चौहान, पमार, सोलंकी परहार, राठौर और गहलौत इत्यादि राजपूत जिस दृष्टि से मछवाहों को देखते हैं वह सबको मालूम है। बीसलदेव उमरावसिंह से जाकर मिला। उसने बड़ी आव-भगत की। अलग डेरा गढ़वा दिया। पहुनाई की। समाचार पूछे और जब उसे मालूम हुआ कि बीसलदेव बादशाह से मिलने जारहा है बड़ी प्रसन्नता प्रगट की। वह चाहता था कि जितने राजपूत बादशाह की आधीनता में आयें, उतना ही उसका प्रेम और मान बढ़ता जायगा। उसने बादशाह से मिलने और हर प्रकार से सहायता करने कराने की स्वीकृति दी।

जब दो चार दिन के मेल मिलाप से राह में आपस में प्यार प्रीति बढ़ गई, उमरावसिंह ने बीसलदेव से पूछा-"आप ने बादशाह से मिलने में अपनी क्या भलाई समझी है? मेवाड़ के गहलौत देहली के बादशाह के नाम से घृणा करते हैं और मैंने केवल आप ही को देखा है, जो इसकी ओर झुके हुये हैं।" बीसलदेव ने अपनी राम कहानी कह सुनाई। रतनगढ़ के लौटा लेने की आशा, बादशाह की सहायता की इच्छा और अपनी लड़की दुर्गावती की सुन्दरता आदि का हाल तात्पर्य्य कि सब कुछ उसको बातों बातों में कह दिया। प्रथम तो बीसलदेव की आयु अधिक हो गई थी। बूढ़े लोग प्रायः व्यर्थ और अधिक बातून हो जाते हैं। दूसरे उनका विचार जब किसी मुख्य उद्देश्य को केन्द्र बना लेता है, तो सिवाय उसके और कुछ उन्हें नहीं सूझता। तीसरे उन्हें अपनी लड़की के सौंदर्य और निपु-

णता पर हद दर्जे का घमंड था। वह विश्वास कर चुका था कि जहाँ दूसरे उपाय असफल होंगे वहाँ दुर्गावती का सौंदर्य अवश्य सफल सिद्ध होगा। मछवाहा बहुत ही जानकार, चतुर और बुद्धिमान आदमी था। एक तो यह कौम यों ही चालाक होती है, दूसरे बादशाह के दरबार में रहने से उसमें विशेष प्रकार की गंभीरता और मामलों के समझने की अधिक योग्यता आगई थी। दरबारियों के मुख में अमृत का स्वाद और हृदय रूपी प्याले में विष भरा रहता है। यह अगर सीधी चाल भी चलें तो समझलो कि वह भी स्वार्थ रहित नहीं होगी।

"सीधे सीधे बगुला चले। कहर घाव मछली पर करे॥"

उमरावसिंह ने पूछा—"वह लड़की कहां है? क्या तुम उसे अकेले शिवपुर ही में छोड़ आये हो?"

बीसलदेव ने उत्तर दिया—"वह मेरे साथ है। सफर के खटके के ख्याल से मर्दाने भेष में है।" बीसलदेव नें उँगली से उसकी ओर संकेत किया। दुर्गावती और आठ नौ जवान राजपूत कुछ दूर थे। मछवाहे ने उस ओर दृष्टि की। चित्त को विश्वास हो गया कि यह अवश्य ही बहुत सुन्दर है और मर्दानी पोशाक से भी उसके स्त्रियों की सी सुन्दरता को हानि नहीं पहुँची है। उसने बीसलदेव के संकेत को अपने हृदय में रक्खा, और सहानुभूति के ढंग में कहा—"मर्द की पोशाक में तुम्हारी लड़की अच्छी राजपूत मर्द जंचती है, लेकिन तुम उससे यह न कहना कि उमरावसिंह को उसके स्त्री होने का ज्ञान हो गया है।" बीसलदेव ने इसे स्वीकार कर लिया। तीसरे दिन मार्ग में मछवाहे ने बीसलदेव से सवाल किया—"क्या अब तक तुमको इस लड़की के योग्य कोई वर नहीं मिला?"

बीसलदेव—"वर तो बहुत हैं। एक कन्या सहस्र वर, मगर मैंने यह प्रण किया है कि जो आदमी मुझे रतनगढ़ का किला

वापिस दिला देगा, यह कन्या मैं उसी को ब्याहूँगा। दूसरे को नहीं।"

उमराव—"बहुत कठिन प्रण है। यह तो भीष्म पितामह के प्रण के समान है। क्या तुम्हारी पुत्री इस बात को जानती है?"

बीसलदेव—"क्यों नहीं, वह सब कुछ जानती है।"

उमराव—"और उसे स्वीकार भी होगा?"

बीसलदेव—"मैंने उससे कभी नहीं पूछा। जानती तो वह अवश्य है और बड़ी आज्ञाकारी संतान है। सम्भव नहीं है कि वह मेरी आज्ञा न मानें। आकाश चाहे पृथ्वी बन जाय और पृथ्वी चाहे आकाश हो जाय, मगर दुर्गावती कभी अपने बाप की आज्ञा न टालेगी। यह मैं जानता हूँ और अच्छी तरह जानता हूं।"

उमराव—"फिर तो आप बड़े भाग्यशाली आदमी हैं।"

बीसलदेव—"इसमें संदेह ही क्या है! हाँ, दूसरी प्रकार मैं दुर्भागी हूँ। रतनगढ़ का क़िला मेरे हाथ से निकल गया। इसका मुझे बड़ा भारी शोक है।"

उमराव—"लेकिन आपको मालूम है कि इस समय राजपूतों को मुसलमानों के साथ छेड़ छाड़ करने का साहस नहीं रहा है। मुसलमानों की सहायता के सहस्रों सामान हैं। हिंदुओं में परस्पर शत्रुता है। वह आपस में ही लड़ते झगड़ते रहते हैं। इस कारण और भी निर्बल हो गये हैं। ऐसी दशा में आप रतनगढ़ की वापिसी की कैसे आशा कर सकते हैं?"

बीसलदेव—"तब मैं अपनी हसरत अपने साथ ले जाऊँगा और दुर्गावती कुँवारी रहेगी।"

उमराव—"ऐसा प्रण न करना चाहिये। बाप को कोई हक़ नहीं है कि संतान को अपने स्वार्थ के लिये बलिदान करें। यह बात मैं मित्र भाव से आपसे कह रहा हूँ।"

बीसल—"मैं समझता हूँ मगर अब प्रण कर चुका हूँ।

वह अटल है। प्राण जाहिं वरु बचन न जाई।"

उमराव–"मगर यह कोई प्रण नहीं है। आपकी कौम गहलौतों ने प्रण किया था कि कभी दिल्ली के बादशाह की आधीनता ग्रहण न करेंगे और आप फिर स्वयं वहाँ जारहे हैं।"

बीसल–'यह बात और है वह बात और है।"

उमराव–"किस तरह ?"

बीसल—"यह प्रण गहलौतों का नहीं किन्तु राणाओं का है। मेवाड़ के राणाओं ने यह प्रण कर रक्खा है और वे निर्वाह कर रहे हैं। चित्तौड़ पर अलाउद्दीन खिलजी ने आक्रमण किया। पुरुष लड़ लड़कर कट गये। स्त्रियां चितापर बैठकर जल गईं। मगर अपनी आन को कायम रक्खा।"

उमराव—'यह सच है, मगर इससे लाभ क्या हुआ ? गहलौत निर्बल होते जारहे हैं और उनके इलाके हाथ से निकलते जारहे हैं। यदि वह मौका और मसलहत से काम लेते तो यह दिन देखना न पड़ता।"

बीसलदेव–"चाहे कुछ ही क्यों न हो ! कौल मरदाँ जान दारद।"

उमराव—"प्रण को पूरा करने के साथ साथ मनुष्य अवसर वादी हो और बुद्धिमता से काम ले तो निस्संदेह प्रशंसा की बात है। और यों ही तो हानि होने के सिवाय और कुछ नहीं होता।"

बीसलदेव के हृदय में बेचैनी हुई। वह इस प्रकार की बातें नहीं सुनना चाहता था। मछवाहे को ध्यान से देखा। वह उड़ती हुई चिड़िया पहचानता था। भांप गया और उसी समय बात को टाल गया। उसने कहा—"मैं आपकी इस प्रतिज्ञा की प्रशंसा करता हूं। लेकिन यह बताइये कि क्या अभीतक आपको अपनी आशा के अनुसार कोई ऐसा जान पर खेलने वाला राजपूत नहीं

मिला ? और क्या आपने किसी और से बात नहीं की है ?"

वीसलदेव—"यह तो मैं आपको कह चुका हूँ कि कई युवक आये। मेरी प्रतिज्ञा सुनकर निराश होकर चले गये हैं। इस दुर्गावती के योग्य मैं रायदेवा को समझता हूँ। वह जंगलों का सरदार है। साहसी है। उसको मैंने देहली में संदेशा तो भेज दिया है। पता नहीं, उसे वह पहुँचा भी दिया गया या नहीं। अब देहली चलने पर पता लगेगा।"

उमरावसिंह रायदेवा का नाम सुनकर चौंक पड़ा। बोला "रायदेवा को जंगलों का सर्दार न कहो। वह जंगलों का डाकू प्रसिद्ध है।"

बीसलदेव—'दुनियां ऐसा ही कहती है, मगर मैं दुनियां की बात पर विश्वास नहीं करता।"

उमराव- 'फिर तुम भूल में हो। बादशाह को जब उसके हालात की खबर मिली कूटनीति से देहली बुला लिया ताकि अधिक ऊधम न मचाने पाये। मगर जहाँ तक मुझे ज्ञात है, वह आज कल देहली में नहीं है।"

बीसल—"क्या ? क्या वह देहली में नहीं है ?"

उमराव—"मैं ऐसा ही समझता हूं।"

बीसल-"अफ़सोस ! मैं तो बड़ी आशा लेकर आया था।"

उमराव-"आप रायदेवा से मिलने आये थे या बादशाह से ?"

बीसल— "दोनों से।"

उमराव—"फिर रायदेवा तो देहली में नहीं है। उसका बाप रायबंगो बीमार हो गया। बेटे को बुला भेजा। उस समय वह नहीं गया। बादशाह की भी इच्छा उसे वापिस भेजने की नहीं थी, मगर फिर कुछ सोच समझकर उसने उसे काम के कारण आज्ञा देदी। वह हरावती चला गया। कौन जाने वापिस आवेगा या नहीं।"

बीसल—"देहली में भी उसने मारवाड़ की तरह नाम और मेल जोल पैदा किया होगा ?"

उमराव—"उसने सिकन्दर के लिये पठान आदि मुसलमानों से कई लड़ाईयां लड़ीं और सबमें विजय प्राप्त की। वह बहादुर अवश्य हैं मगर बादशाह उससे अब भी खटकता रहता है। सिकन्दर के हृदय में उसने स्थान नहीं पाया। इससे आप उसके मेल जोल का अनुमान लगा सकते हैं।"

बीसल—"खैर ! बहादुर तो है लेकिन बादशाह को उससे खटकने की आवश्यकता क्या थी। वह तो सच्चा और बहादुर राजपूत है।"

उमराव—"अजी ! वह नाम के लिये तो शाही मंसबदार है। लड़ाई में रहे तो कुशलता रहती है वर्ना वह अब तक सरहद्दी इलाकों पर डाके मारा करता है। सरहद पर उसके आदमी बहुतायत से रहते हैं। बादशाह को इसका पता है, मगर चूंकि वह लड़ाइयाँ जीत चुका है, इस कारण से बादशाह उसके अपराधों को टालता रहता है, परन्तु बकरे की माँ कब तक खैर मनायेगी। अंत में एक न एक दिन उसे इसका फल भोगना ही पड़ेगा।"

बीसल—"तो फिर मुझे क्या करना चाहिये ?"

उमराव—"मैंने बचन दिया है कि बादशाह से आपको मिला दूँगा। जहां तक हो सकेगा आपकी सहायता करूँगा। इसके सिवाय आप चाहते क्या हैं ?"

बीसल—"आपकी कृपा है।"

दसवाँ प्रकरण

बीसलदेव और कपट जाल

चलती चक्की देखकर, दिया कबीरा रोय।
दो पाटन के बीच में, साबित बचा न कोय॥ कबीर सा०

दुनियां है छल कपट ! दुनियां स्त्री पुरुष के कारोबार व व्यवहार और आकाश व पृथ्वी के सम्बन्ध को नहीं कहते। दुनियाँ कोई और वस्तु है, मगर केवल किसी किसी ने इस दुनियां की समझ प्राप्त की है। अज्ञानी घरबार को दुनियां समझकर कमर से लँगोटी बांध लेते हैं। वे या तो जंगल की धूल छानते हैं या घर घर भीक मांगते फिरते हैं। मनुष्य इनको ही त्यागी कहते हैं मगर सच्ची बात तो यों है कि इनकी कमर की लंगोटी में ही दुनियां मौजूद है।

आज हम तुम्हें बताते हैं कि दुनियाँ वास्तव में क्या है। दुनियां कहते हैं ईश्वर को भूलकर हर बात में अपनी टांग अड़ा देना और अपने को हर कार्य का कर्त्ता जानकर ईश्वर के सर्वव्यापी नियम के ख्याल को हृदय से त्याग देना। यह दुनियाँ है। इसके सिवाय दुनियां और कोई नहीं है। जहां अपना पराया हो, जहाँ अपने पराये पन के सिलसिले में छल कपट हो, जहां छल कपट के परदों में भले बुरे का विचार न हो, और जहां भलाई और बुराई का विचार न रखते हुये मनुष्य अपने स्वार्थ का दम भरता हुआ दिखाई दे, समझलो इसमें दुनियां है। वह दुनियां का कुत्ता है और सच्चे अर्थों में वही सच्चा दुनियाँदार है। जो आदमी उसे त्याग दे हम उसको संसार का त्यागी कहते हैं। जो इसे नहीं छोड़ता, फिर वह दुनियांदार न कहलायेगा तो क्या कहलायेगा। उमरावसिंह

मछवाहा बहुत बड़ा दुनियांदार था। स्वार्थी, कपटी रेत से तेल निकालने वाला, आंखों में धूल डालकर अन्धा करने वाला। जिस समय से उसकी दृष्टि दुर्गावती पर पड़ी थी, वह उस पर लट्टू हो रहा था। जी से चाहता था कि किसी प्रकार बीसलदेव उसके जाल में फँस जाये। फिर इस सुन्दर लड़की का हाथ आना आसान हो जायगा। उसे अच्छी तरह मालूम था कि मेवाड़ के गहलौत बात के सच्चे और प्रण के पक्के होते हैं। इनके जो हृदय में ठन जाती है वह ठन ही जाती है, गहलौत रघुवंशी है। यह होने पर भी कि रघुवंशियों के साथ क्या क्या कुचालें नहीं चली गई फिर भी रघुवंशी हैं कि आज तक अपने प्रण पर स्थिर हैं। श्रीराम और श्री लक्ष्मण के वंश से हमको इसी प्रकार के गुणों की आशा रखनी चाहिये।

बीसलदेव देहली में आया। वह सीधा सादा आदमी था। मछवाहे ने उसके रहने के लिये एक अति सुन्दर महल दिया। दस बीस नौकर रक्खे। पोशाक ठीक करादी। घुड़सार में कई अरबी घोड़े, नैपाली टांगन और मरहठे टट्टू बँधवा दिये। उसने मना किया। अपनी निर्धनता की दशा भी वर्णन की, मगर उमरावसिंह तो किसी और धुन में था। उसने बूढ़े गहलौत के हृदय में यह बात बैठाई कि बादशाह से मिलने से पहले अपने ठाठ बाट को ठीक करलो, ताकि उस पर तुम्हारी हैसियत का प्रभाव पड़े और बादशाह तुमको प्रतिष्ठित कर्मचारियों में शामिल करले। जो योंही उससे मिलोगे तो कोई नतीजा न होगा।

बीसलदेव—"मुझे मान और बड़ाई का इतना ध्यान नहीं है।

उमरावसिंह—"रतनगढ़ का तो ध्यान है।"

रतनगढ़ के वापिस लेने के इरादे में उसका कमजोर पहलू था, और मछवाहा इसी निर्बल पहलू को दबाकर उस निर्बल

बूढ़े को चारों शाने चित्त गिराना चाहता था।

बीसलदेव—"मगर मेरे पास इतना धन नहीं है जो मैं नौकर चाकर और घोड़े सवारी आदि रख सकूँ।"

उमरावसिंह—"यह मेरा धन किस का है? अगर यह आपके काम न आयेगा तो किसके काम आयेगा?"

बीसलदेव—"मैं देहली में भीक मांगने या दान लेने नहीं आया।"

उमरावसिंह हँसा—"यह मैंने कब कहा है। मैं तो ऐसा उपाय करना चाहता हूँ कि रतनगढ़ आपके हाथ आजाये और काम में भी आसानी हो। अगर यों ही आप बादशाह से मिलेंगे तो मुझे आशा नहीं है कि वह आपका कार्य करेगा।"

बीसलदेव—"फिर क्या करूँ?"

उमरावसिंह—"रईसों के से ठाठ में उससे मिलिये। अपना प्रभाव उस पर डालिये।"

बीसलदेव—"नहीं, नहीं, मैं आपके धन को इसका साधन बनाना अच्छा नहीं समझता।"

उमरावसिंह—"तो मैं जितना धन आपको देता हूं उसका दस्तावेज लिखते जाइये। जब धन मिल जाये मुझे लौटा दीजियेगा। इसे केवल ऋण समझिये। ऋण लेने में तो कोई हानि नहीं है।"

बीसलदेव—"ऋण आत्मिक, मानसिक और शारीरिक रोग है। मैं इस रोग को मोल लेना नहीं चाहता। कौन जाने आगे चल कर क्या हालत हो। अगर सिकन्दर ने मेरी सहायता नहीं की तो फिर मैं एक पल के लिये भी देहली न ठहरूँगा।"

उमरावसिंह—"इसका जिम्मेदार मैं हूँ। मैं उसे राजी कर लूँगा। और जब वह आपका काम करदे तब यह ऋण मुझे लौटा दें। यह तो आपको अवश्य करना चाहिये।"

लालच बुरी बला है। लालच के जाल में फँसकर आदमी क्या नहीं करता। चुगे के लोभ में मछली कांटे के फन्दे में अपनी गर्दन दे देती है। दाने के लालच में पक्षी जाल में फँस जाते हैं। शिकार के लोभ में शेर और चीते मारे जाते हैं। हाथी सा बलवान पशु किस सरलता से इसी चारे के कारण जंजीरों से जकड़ लिया जाता है। निर्बल आदमी का तो कहना क्या है! बीसलदेव पर मछवाहे की चालबाजी चल गई। उसने कई लाख रुपये उससे उधार लिये। मकान की सजावट कराई और अमीरों के रंग ढंग में रहने लगा।"

देहली में आये हुये उसे कई महीने बीत गये मगर बादशाह से मिलने का अब तक कोई अवसर हाथ नहीं आया। सिकंदर लोदी इसके आने से अनजान नहीं था! उस समय में आज कल की तरह प्रशंसा और परिचय करने की प्रथा का नाम तक नहीं था। सिकन्दर ने स्वयं इससे मिलना चाहा, मगर मछवाहा एक ओर तो उसे उल्टी सीधी पट्टी पढ़ा कर रोक देता था, दूसरी ओर बीसलदेव को अपना उल्लू बना रहा था। इसकी नीयत यह थी कि जब गहलौत खूब जाल में फँस जाय तो फिर बादशाह से उसकी मुलाकात करादी जाये। वह खूब जानता था कि किसी धनहीन रईस के लिये शाही वजीफा नियत करा दिया जाना साधारण बात थी। हाँ, रतनगढ़ का मिलना कुछ कठिन काम था, मगर वह इस विचार में था कि धीरे धीरे बादशाह का ध्यान इस ओर दिलाया जाये और जब वह राजी हो जाय तो बीसलदेव को दरबार में उपस्थित किया जाय। वह समय आगया। जब बादशाह ने रजामंदी प्रगट की—"बीसलदेव को रतनगढ़ का क़िला दिलाया जायगा।" वह एक दिन बीसलदेव के पास आया और कहने लगा—

"मुबारिक हो। कल आपको बादशाह से मिलने का सौभाग्य प्राप्त होगा।"

बीसलदेव की दिली इच्छा पूर्ण हुई। प्रसन्न होकर कहने लगा—"यह सब आपकी कृपा है।"

उमरावसिंह—"ऐसे शब्द म कहिये। यह मेरी सेवा है लेकिन मैं एक बात आपसे पूछना चाहता हूं। अगर आज्ञा हो तो कहूँ।"

बीसलदेव—"कहिये क्या कहना है?"

उमरावसिंह—"अगर आपको रतनगढ़ का किला मिल जाये तो आप दुर्गावती के हाथ का हक़दार किसको बनायेंगे।"

बीसलदेव ने जवाब में कुछ देर की। फिर सोच विचार करने के बाद कहा—"मेरी प्रतिज्ञा तो यह थी कि जो राजपूत मुझे रतनगढ़ दिला देगा, दुर्गावती उसकी होगी। मगर यह प्रतिज्ञा केवल राजपूत के लिये है। मैं और किसी को अपनी लड़की नहीं दूँगा।"

उमरावसिंह खिल खिला कर हँसा—"आप बूढ़े आदमी हैं। आखिर अलाउद्दीन और पद्मिनी के हालात की ओर आपका ध्यान गया है। निश्चिन्त रहिये इस प्रकार की कोई बात नहीं है। सिकन्दर लोदी को किसी राजपूतिनी के साथ शादी करने का ख्याल नहीं है। दुर्गावती का इच्छुक कोई राजपूत ही है।"

बीसलदेव अपनी वारी पर हँसा—"अगर यह स्थिति है तो मुझे क्या इन्कार हो सकता है। लड़की माँ बाप के घर सदैव तो नहीं रहती। अगर कोई राजपूत रतनगढ़ के वापिस दिलाने में मेरी सहायता कर रहा है तो मैं प्रसन्नता पूर्वक यह लक्ष्मी उसी को दूँगा। लेकिन अच्छा होता कि मैं पहले ही से उसके नाम व पते से जानकार होता।"

उमरावसिंह मुस्कराया--"क्या अब तक भी आप नहीं समझे ?"

बीसलदेव भी खिल खिला कर हँसा—"समझने को तो मैं पहिले ही से कुछ न कुछ समझ रहा हूँ, लेकिन यदि स्पष्ट शब्दों में कह दिया जाता तो अच्छा होता।"

उमरावसिंह—"मैं अपने भावों को अब क्यों छिपाऊँ। वह राजपूत मैं ही हूं। जब से मैंने आपकी लड़की को देखा है तब ही से मैं उसको अपने अंधेरे घर का प्रकाश करने वाला चिराग़ बनाना चाहता हूं।"

बीसलदेव—"मुझे कोई भी इन्कार नहीं है लेकिन रतनगढ़ को पहिले हाथ में आजाना चाहिये।"

उमरावसिंह—इस शर्त को सुनकर चौंका, मगर सोचा कि देखा जायगा और बीसलदेव का विश्वास करके अपने घर गया।

ग्यारहवाँ प्रकरण

बीसलदेव और सिकन्दर लोदी

मांगन मरन समान है, मत कोई माँगे भीख।
माँगन सों मरना भला, यह सतगुर की सीख॥ कबीर॥

मरजाना अच्छा है, मगर भीख माँगना अच्छा नहीं है। ईश्वर ने मनुष्य को मन, बुद्धि, चित और हाथ पैर के साथ ज्ञानेन्द्रियां प्रदान की हैं। या तो आदमी उनसे काम लेकर अपनी दशा को श्रेष्ठतर और सुखदायक बनाये या संसार से मान और बड़ाई लेकर चला जाये। फक़ीर हो या अमीर, जवान हो या बूढ़ा, कोई भी हो, अगर वह मनुष्य है तो अपने बाहुबल पर भरोसा करे। अगर यह नहीं हो सकता तो उसको मनुष्य कहलाने

का कोई अधिकार नहीं है। मनुष्य योनी संसार में सबसे बढ़ कर है और मनुष्यों की गिनती में राजपूत को हम निर्भयता से सर्व श्रेष्ट मनुष्य कह सकते हैं, क्योंकि यह मनुष्य में माननीय समुदाय है जो स्वतन्त्रता के नियम की नींव रखता हुआ, जीवन भर परिश्रम करता हुआ परस्थितियों पर विजयी होने का इच्छुक रहता है। यदि किसी राजपूत को इस से गुण रहित पाओ तो समझलो कि यह क्षत्री नहीं है।

बीसलदेव राजपूत था और राजपूतों में गहलौत राजपूत था। मालूम नहीं उसके हृदय में क्यों और किस प्रकार दूसरों से सहायता माँगने का विचार उत्पन्न हुआ। दीनता पराधीनता कहलाती है। यह सच है, मगर दीनता की आधीनता को दूर करने को एक दो नहीं सैकड़ों उपाय हो सकते हैं। जो शेर दूसरे मवेशियों की तरह घास खाता है, वह शेर कहां रहा। बीसलदेव अहंकारी होता हुआ भी अपने पाये से गिर गया। जब मनुष्य एक बार फिसल जाता है तो उसे बार बार गिर कर पटकें खानी पड़ती हैं। यही हाल उसका भी हुआ। कुछ तो वह स्वयं मन का निर्बल हो गया था, कुछ उमरावसिंह की संगत ने उसे कुछ का कुछ बना दिया था।

दूसरे दिन वह दरबार में उपस्थित किया गया। सिकन्दर ने उसे बेपरवाही की दृष्टि से देखा। उसे पहले ही से ज्ञात था कि यह उपयोगी आदमी नहीं है। ऐसे आदमियों का कौन मान करता है। तुम्हारे द्वार पर प्रतिदिन भिक्षुक आया करते हैं तुम स्वयं जानते हो उनके साथ कैसा बर्ताव किया जाता है। और तुम उनके साथ कैसा बर्ताव करते हो। साधू निर्लोभ होते हैं। अगर कोई आदमी साधुओं का बाना पहन कर और लालची बनकर किसी बादशाह के सम्मुख आकर हाथ फैलाता है तो क्या वह सच्चा साधू कहा जा सकता है। इसी प्रकार

अगर कोई कुलीन भला मनुष्य भी किसी दूसरे का आश्रित बन कर उससे सहायता का इच्छुक होता है तो उसे भी भलमन-साहत से रहित समझो।

बीसलदेव ने तीन बार झुककर नमस्कार किया। बादशाह ने उसे बूढ़ा समझकर बैठने का संकेत किया। वह अदब से बैठ गया। सिकन्दर ने पूछा "वर्षों हुये जब मैंने तुमको याद किया था मगर तुम नहीं आये। इसका कारण क्या था?"

बीसलदेव—"अनुकूल परिस्थियों के कारण विवश था।"

सिकन्दर हँसा—"अनुकूल परिस्थियों के समय ही तो आदमी को दूसरों की सहायता करना आवश्यक होता है, मगर ऐसे समय बेपरवाही की जाती ही है।" बीसलदेव इस बात को सुनकर सुन्न हो गया। वह हाज़िर जवाब नहीं था। और न अब तक इसमें दरबारियों की सी चापलोसी की बात करने की आदत आई थी। दूसरे अन्य बातों की तरह यह गुण भी अभ्यास, शिक्षा और संगत के आधीन है। जब तक मनुष्य को संगत, शिक्षा और अभ्यास का लाभ न मिले, तब तक इसकी आशा नहीं की जा सकती। सिकन्दर अनुभवी मनुष्य था। वह समझ गया कि राजपूत इसके सवाल का उचित उत्तर नहीं दे सकता। थोड़ी देर के बाद बोला "बीसलदेव तुम देहली में आगये बहुत अच्छा किया। तुम बूढ़े हो। अब किसी प्रकार काम काज के योग्य नहीं हो, परन्तु फिर भी अगर तुम प्रयत्न करो तो शाही सेवा को सचाई से कर सकते हो।"

बीसलदेव—"मैं हर प्रकार राज आज्ञा के आधीन हूं।"

सिकन्दर—"बहुत अच्छा। मैं तुमको अपने वजीफ़ादारों की सूची में सम्मिलित करता हूं। कभी कभी तुमसे बहुत सी आवश्यक बातों में सलाह लिया करूँगा। विश्वास रक्खो,

देहली में किसी प्रकार का कष्ट न होगा। राजस्थान की अपेक्षा यहाँ पर आराम और सुभीता है। हर तरह के आराम और ठाठ के सामान हैं। तुम यहां आराम से रहो। कभी कभी मैं तुम्हें बुला लिया करूँगा।"

बीसलदेव—"यह हजूर की कृपा है, मगर मैं तो कोई और ही संकल्प लेकर आया हूं।"

सिकन्दर—"वह क्या?"

बीसलदेव—"पठानों ने मुझसे रतनगढ़ छीन लिया है। मैं प्रार्थी की हैसियत में आया हूँ।"

सिकन्दर के मांथे पर सिकुड़न आगई,—"मुझे इसका पता है। उमरावसिंह ने मुझे सबकुछ सुना दिया है।"

बीसलदेव—"हुजूर की बस इतनी ही कृपा होनी चाहिये।"

सिकन्दर—"क्या तुमको देहली में रहना स्वीकार नहीं है?"

बीसलदेव मूर्ख था। वह हां कह सका न नहीं। राजस्थान में तो फिर भी राजपूत उसे मान बड़ाई की दृष्टि से देखते थे, मगर राज दरबार में आकर उसको प्रगट हो गया कि उसकी यहाँ पहुँच नहीं हो सकती। वह स्वयं अपनी निगाहों से गिर गया। जो दूसरे की निगाहों से गिर जाता है, वह तो कभी न कभी सँभल भी जाता है, मगर जो अपनी निगाह से आप गिरता है उसके फिर उठने और उभरने की आशा क्या हो सकती है। वह चिन्ता में पड़ गया। अगर 'हाँ' कहता है तो बिलकुल झूठ है। अब तक उसके मन और वाणी ने झूठ का नाम तक नहीं सुना था। यदि "नहीं" कहता है तो संभव है कि बादशाह अप्रसन्न हो जाये। यह हालत देखकर उमरावसिंह से नहीं रहा गया। उसने दरबार के नियम के विरुद्ध जबान खोली "हुजूर के चरणों की कृपा से कोई भी वंचित नहीं रहना चाहता। बीसलदेव को यहां रहने से इन्कार कब हो सकता है, मगर

उनकी अभिलाषा है कि रतनगढ़ को किसी प्रकार फिर स्वतंत्रता प्राप्त हो जाय।"

सिकन्दर—"क्यों बीसलदेव यही बात है ?"

बीसलदेव–"हां हजूर ! राजा उमरावसिंह ने मेरे विचारों को स्पष्ट शब्दों में प्रगट कर दिया।"

सिकन्दर—"परन्तु यह एक ऐसी बात है जो सोच विचार के योग्य है। बिना समझे बूझे किसी प्रकार की कार्यवाही नहीं की जा सकती है और न 'हां' या 'नहीं' कहा जा सकता है। तुम यहाँ रहो। जब रतनगढ़ के कुल हालात मालूम हो जायंगे उस समय राय कायम करने का अवसर मिलेगा। जल्दी में कोई काम नहीं हो सकता।"

बीसलदेव—"जैसी हुजूर की इच्छा।"

सिकन्दर ने दस्तूर के अनुसार उसे पोशाक प्रदान की और उमरावसिंह को समझा दिया कि बुड्ढे को कोई कष्ट न होने पावे और फिर वह नमस्कार करने के बाद अपने स्थान पर उमरावसिंह के साथ चला आया।

बारहवाँ प्रकरण

बीसलदेव और मेल मिलाप

माया आस निरास है, माया बास कुबास।
या प्रपंच को जो तजे, सोई गुरु का दास॥

बीसलदेव के लिये जो वजीफा दरबार से नियत किया गया वह अपर्य्याप्त था। उमरावसिंह ने उसे कुछ और ही बता रक्खा था। दरबार से लौट आने पर बीसलदेव ने उससे

कहा-"आपने मेरे खर्चे बहुत बढ़ा दिये हैं। मैं इस प्रकार ठाठ बाट से रहने का आदी न था।"

उमरावसिंह—"मगर अब तो आप आदी हो चले हैं।"

बीसलदेव—"अफसोस है मैं व्यर्थ ही देहली आया। यहाँ मेरा काम बनता हुआ दिखाई नहीं देता।"

उमरावसिंह—'यह क्यों ?"

बीसलदेव-"बादशाह ने कोई बात स्पष्ट रूप से नहीं कही और फिर जो बजीफा नियत हुआ है, वह मेरी गुजर के लिये भी पूरी नहीं है। इससे तो नौकरों का वेतन तक नहीं दिया जा सकता।"

उमरावसिंह—"आप कुछ चिंता न करें। बादशाह इसी तरह की बात चीत करते हैं। आपका कार्य तो अवश्य होगा। मगर हां बिलम्ब अवश्य होगा। रहा व्यय का मामला उसका जिम्मेदार मैं हूँ।"

बीसलदेव-"कब तक ?"

उमरावसिंह—"जब तक मेरी जान में जान है। मैं आपकी सेवा करना अपना गौरव समझता हूँ।"

बीसलदेव -"मगर मुझे यह स्वीकार नहीं है कि आपसे इतना ऋण लेकर खर्च करूँ क्योंकि इसका चुकाना मेरी शक्ति से बाहर हो जायगा।"

उमरावसिंह—"आपको बादशाही दरबार का अनुभव नहीं है। यहां अधिकतर पुरस्कार बंटते रहते हैं। जिस समय उसकी दृष्टि आप पर पड़ी, आप माला माल हो जाँयगे।"

बीसलदेव—"नहीं, मुझे इस दृष्टि की आशा नहीं है।"

उमरावसिंह—"क्यों ?"

बीसलदेव—"मैं एक तुच्छ श्रेणी का बनाया गया हूँ। न

कोई सेवा मेरे लिये है जिसके बदले किसी समय पुरस्कार की आशा रख सकूं और न बादशाह मुझे इस योग्य समझता है। मुझे तो आशा थी कि मैं शाही कर्मचारी बना दिया जाऊँगा। आजकी बात से उसकी भी आशा जाती रही।"

उमरावसिंह—"आपकी अवस्था अब इस योग्य नहीं है कि आप सेना लेकर रण क्षेत्र में जासकें। मैं जानता हूं कि आप राजपूत हैं और रण भूमि में अच्छा काम कर सकेंगे फिर भी इस काम के लिये युवक ही अधिक उपयुक्त होते हैं, परन्तु इससे यह परिणाम निकालना कि आपसे कोई काम न लिया जायगा, सर से पैर तक गलत है। बादशाह ने संकेत रूप में कह दिया है कि आप उसके मन्त्री रहेंगे। सलाह मशवरा रणभूमि में जाने से भी अधिक लाभदायक सिद्ध होते हैं।"

बीसलदेव—"मैं अजान और अनजान आदमी हूँ। मैं क्या सलाह दे सकता हूँ।"

उमरावसिंह-"मगर बादशाह इस प्रकार नहीं समझता।"

बीसलदेव—"वह क्या समझता है?"

उमरावसिंह—"वह यह जानता है कि आप राजस्थान की भूमि के चप्पे चप्पे से जानकार हैं और उसे हर प्रकार की जानकारी करा सकते हैं।"

बीसलदेव—"कोई उदाहरण?"

उमरावसिंह—"आप हरावती और पटहर में रह चुके हैं। बमौदा दुर्ग से जानकारी है। अगर आप उस दृढ़ किले का नक्शा बना कर दे देंगे तो वह बादशाह की प्रसन्नता का कारण होगा।"

बीसलदेव—"बमौदा तो रायदेवा का क़िला है। रायदेवा बादशाह का स्वयं विश्वास पात्र है। इसे इस क़िले के नक्शे की क्या आवश्यकता हो सकती है?"

उमरावसिंह—"मैंने केवल एक बात उदाहरण के ढँग पर कही है। इसके सिवाय आपका यह विचार कि रायदेवा बादशाह का विश्वास पात्र है बिलकुल झूंठ है। बादशाह को रायदेवा का सबसे अधिक खटका है। वह केवल अवसर देख रहा है। मेरे विचार में रायदेवा किसी प्रकार सिकन्दर लोदी के जाल से बचकर नहीं जा सकेगा।"

बीसलदेव—"राम राम! यह तुम क्या कहते हो। सिकंदर के बुलाये जाने पर रायदेवा ने हरावती का परित्याग किया और अब तक उसका हृदय हाड़ा की ओर से शुद्ध नहीं है। यह बात मेरी समझ में नहीं आई।"

उमरावसिंह—"देखिये मैंने इस समय जो बातें आपसे कही हैं, वह बिलकुल मित्र भाव में की हैं। देहली में हर आदमी को सतर्क रहने की आवश्यकता है। अगर आपका मुझे विश्वास न होता या अगर मैं किन्चित भी खटकता होता तो यह शब्द कभी भी न निकलते। इनको अपने अन्तःकरण में रखते चलिये। सिकन्दर सदा शतरंज की चाल चलकर अपने शत्रुओं को पराजय किया करता है।"

बीसलदेव—"मगर मुझे विश्वास है कि रायदेवा बात का सच्चा आदमी है। बादशाह को उसकी ओर से ऐसा विचार हृदय में न रखना चाहिये।"

उमरावसिंह—"आपको क्या मालूम है। बादशाह को एक एक आदमी की हरकतों की जानकारी है। रायदेवा रहने को देहली में रहता है मगर भेष बदल बदल कर अधिकतर दक्षिण दिशा की ओर अब भी लूट पाट किया करता है। उसकी लूट का माल सब हरावती जाता है। अगर बादशाह को उसकी ओर से बुरा ख्याल है तो उसमें इसका दोष क्या है?"

बीसलदेव-"इस समय तो रायदेवा देहली में भी नहीं है।"

उमरावसिंह—"वह कीकरी के युद्ध पर भेजा गया था। किला तो उसने विजय करके बादशाह को दे दिया, मगर वह राजस्थान में अब भी लूटपाट में व्यस्त है। आप यह भेद किसी पर प्रगट न करें। इस बार जब रायदेवा लौट आवेगा बादशाह किसी न किसी बहाने से उसका काम तमाम कर देगा।"

बीसलदेव—"यह कैसे अफ़सोस की बात होगी।"

उमरावसिंह—"अफ़सोस कैसा! राज दरबार में तो ऐसा होता ही रहता है। इसका इलाज ही क्या है? आप केवल अपना काम देखिये। दूसरों की ओर ध्यान देने की आवश्यकता कब है?"

बीसलदेव—"क्या रायदेवा को बादशाह के सन्देह का पता है?"

उमरावसिंह—"मैं नहीं कह सकता, मगर एक बात अवश्य है कि रायदेवा सदा चौकन्ना रहता है और बादशाह को परीक्षा का अवसर नहीं देता। बादशाह ने बहुत सी तरह से प्रयत्न किया है कि जब वह भेष बदले हुये अकेला कहीं जावे उसे तुरंत पकड़ना चाहिये मगर वह भाग्य का बली है कि वह आज तक किसी के हाथ नहीं आया।"

बीसलदेव—"धन्य है इस साहस और बहादुरी को! शेर की मांद में रहे और फिर भी उसके पंजे में न आवे। यह बात मेरी समझ में नहीं आती।"

उमरावसिंह—"यही तो अचरज की बात है। उसके पास दो बड़ी शक्तियाँ हैं। एक तो उसका घोड़ा है जो सरपट दौड़ते हुये हवा तक को अपने पीछे छोड़ जाता है और दूसरी शक्ति उसकी तीक्ष्ण बुद्धि है मगर फिर भी तो वह डाकू ही है।"

बीसलदेव—"यदि बादशाह की नीयत मलीन है तो वह सहस्रों उपाय सोच सकता है। उसके लिये देहली में किसी एक

को अपने पंजे में लाना सरल बात है।"

उमरावसिंह—"लगभग कुल राजपूत जो इस समय शाही सेना में हैं, रायदेवा के नाम पर जान देते हैं। उसके दो भाई और कई हाड़ा सरदार भी बलवान और बुद्धिमान हैं। बादशाह को इन सब बातों का ध्यान है। वह किसी को सन्देह दिलाना नहीं चाहता और साथ ही ऐसा काम भी नहीं करना चाहता जिसके कारण से स्वयं उस पर आपत्ति आये।"

बीसलदेव—"रायदेवा कब तक यहां आयेंगे?"

उमरावसिंह—"मुझे पता नहीं है। बादशाह को सब बातों की सूचना रहती है मगर उनको प्रगट नहीं करता मैं। इतना कह सकता हूँ कि वह राजस्थान में है।"

बीसलदेव ने कुछ अपने मन में सोच विचार किया। फिर उससे कहा—"बमौदा के दुर्ग का नक्शा मैं तैयार कर सकता हूं और वहां के हालात का पता भी अच्छी तरह दे सकता हूँ, परन्तु इसकी इच्छा बादशाह ने की है या वह आपकी उपजहै?"

उमरावसिंह ने अपनी बारी पर सोचा। "मैंने आपसे कोई बात नहीं छिपाई और छिपाना व्यर्थ है। जब हम दोनों ही बादशाह के नमक खाने वाले होगये तो एक दूसरे से अपने विचारों को क्यों छिपायें। मैंने जो कुछ आपसे कहा है, वह बादशाह ही के कहने से कहा है।"

बीसलदेव—"क्या आपको स्वयं रायदेवा से कोई शिकायत है?"

उमरावसिंह—"नहीं, मुझसे उससे कभी बातचीत तक भले प्रकार नहीं हुई। हम दोनों रहने को तो दिल्ली ही में रहते हैं मगर वह मछवाहों के नाम से चिड़ता है। इस कारण से मुझे उससे मिलने तक का साहस नहीं होता।"

बीसलदेव—"मैं बमौदा के क़िले का चित्र तो तैयार कर दूँगा, लेकिन बादशाह से पुरस्कार दिलाना आपका काम है।

इस की भी इच्छा केवल इसीलिये है कि आपके ऋण से उऋण हो जाऊँ।"

उमरावसिंह—"इसकी चिन्ता न कीजिये। मैं धीरे धीरे बादशाह को आपकी दशा से जानकार कराता रहूंगा। यह संभव नहीं है कि वह इधर ध्यान न करे। हां आपको मेरी इस प्रार्थना का ध्यान रहे।"

बीसलदेव—"कौल मरदां जान दारद। जो रतनगढ़ मुझे वापिस दिलायेगा वही इस अति सुन्दर रत्न का अधिकारी होगा।"

तेरहवाँ प्रकरण

गंगाराम और दुर्गावती

जती सती गुनवान नर, तपसी सूर अनेक।
यह सब जग में बहुत हैं, चेतवान कोई एक॥

संसार में कोई मनुष्य ऐसा नहीं है जो गुणों से रहित हो। कोई न कोई गुण सब में होता है और इस दृष्टि से एक भी आदमी यहाँ नहीं है जो बहुत बुरा समझे जाने के योग्य हो। परन्तु इन सबमें प्रशंसा उस आदमी की है जो विशाल दृष्टि होकर हर बात की जड़ तक पहुँचे। हर वस्तु के भलाई बुराई के जानने और उनसे काम निकालने की योग्यता रखता हो। ऐसे मनुष्य संसार में बहुत कम देखने में आते हैं और इसी प्रकार के आदमी दूसरों पर शासन करने के लिये अधिकतर उपयुक्त समझे जाते हैं।

कोई राज उस समय तक बहुत दिनों तक स्थिर नहीं रह सकता जिसमें यह विशेष गुण न हों। किसी हाकिम को सच्चे अर्थों में हाकिम बनने का अधिकार प्राप्त नहीं है जिसमें

यह गुण न हो।

वेदों ने चार प्रकार के मनुष्य बताये हैं। ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र। यह वास्तव में प्राकृतिक विभाजन है। ब्राह्मण का धर्म यह है कि उसका मन और बुद्धि एकाग्र होकर केवल सूक्ष्म विचारों से सम्बन्ध रक्खें। वैश्य की प्रशंसा यह है कि वह शारीरिक आराम और सुख के कार्यों की समझ बूझ रखता हुआ सामाजिक व्यवस्था के उन सामानों को एकत्रित करने का प्रबन्ध करे, जो जीवन को सुखदायक बनाने के लिये उपयुक्त और आवश्यक हैं और शूद्र की विशेषता यह है कि वह निचली श्रेणी के कार्यों से सम्बन्धित रह कर अपना कर्तव्य करता रहे। यहाँ तीनों के तीन गुण हैं। क्षत्री इनसे बिलकुल अलग समझा गया है। वह इस प्रकार का जीवधारी है जो सूक्ष्म, स्थूल, शारीरिक, अध्यात्मिक व ऊँची और नीची बातों में से सब की समझ रक्खे और सबको अपने लिये लाभदायक बनाता हुआ सबको एक विशेष नियम और सिद्धान्त पर कायम करने कायम रखने और कायम बनाने में निपुण हो। यही कारण है कि प्रकृति माता ने मानव मंडल में क्षत्री को सबसे अधिक शिरोमणी बनाया है। वह राजा बनाया गया है। जिसमें यह गुण न हों, वह क्षत्री नहीं कहा जा सकता। इस कारण यह तीनों प्रकार के वर्णों से ऊँचा माना गया है। शास्त्र कहते हैं:—क्षात्र धर्म पराधर्मः (क्षत्री का धर्म सब धर्मों से ऊँचा है)। वह केवल वैश्य और शूद्रों ही का स्वामी नहीं है किन्तु प्राकृतिक व्यवस्था में ब्राह्मण भी उसके आश्रित और आधीन बनाये गये हैं। जिस प्रकार आदमी का हाथ देह के कुल भागों तक पहुंचकर उसकी आवश्यकताओं का उत्तर दाता प्रबन्धक और रक्षक रहता है, उसी प्रकार क्षत्री भी हर स्थान हर अवसर, हर समय और हर प्रकार के सामान और वस्तुओं पर पहुँच रखता हुआ सबको

अपने अधिकार में लाया करता है। जो सबसे अधिक सेवा करे सब जगह पहुँच सके, सबकी रक्षा कर सके वह क्षत्री है। इससे अधिक किसी का मान नहीं होता।

कोई राज्य उस समय तक पूर्ण नहीं कहा जा सकता, जब तक यह गुण उसमें न हों। मुसलमानों ने इस देश में राज्य अवश्य किया। सैकड़ों वर्षों तक वह शासन करते रहे, मगर क्षत्रीपन के इस गुण की ओर उनकी दृष्टि अधिक नहीं थी! यह कारण है कि हिन्दुस्तान में उनको कभी चक्रवर्ती राज प्राप्त नहीं हुआ। अंग्रेजों में यह गुण मौजूद है और उन्होंने थोड़े ही समय में अशोक की चक्रवर्ती पदवी और युधिष्ठिर जैसा विश्व व्यापी राज्य प्राप्त किया। मुसलमानों में जासूसी का प्रबन्ध इतना पूर्ण नहीं था। अलाउद्दीन खिलजी पहला बादशाह था, जिसने उसको अपने ढंग पर पूरा कर लिया था, मगर उसमें संयम की शक्ति कमी के साथ थी। इसलिये यद्यपि अपने समय में सफल कहा जा सकता है, मगर उसके मरने के पीछे ही राज्य की जड़ उखड़ गई। इसके पीछे के समय में अकबर ने इस नियम को इससे अधिक समझा। वह अधिक सफल रहा और अकबर, जहांगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब के समय में राज्य की जो उन्नति हुई वह मुसलमानों को पहले प्राप्त नहीं हुई थी। औरंगजेब निस्संदेह सबा और दूरदर्शी बादशाह हुआ है मगर संयम के गुण से रहित था, इस लिये प्रकृति ने उसकी बादशाहत का उत्तराधिकार धीरे धीरे अंग्रेजों को प्रदान कर दिया।

जो गुण राज करने के लिये मुख्य हैं, वही उन व्यक्ति गत लोगों के लिये भी आवश्यक है, जो छोटी स्थिति से उन्नति करते हुये उच्च श्रेणी तक पहुंचना चाहते हैं।

रायदेवा साधारण क्षत्री था। उसका जीवन छोटी हैसियत से प्रारम्भ हुआ था, मगर आदमी दूरदर्शी था। हम उसके डाका मारने या आक्रमण और लूट करने के स्वभाव को अच्छा नहीं समझते। मगर उससे इंकार नहीं कर सकते कि प्रकृति से उसने राज करने की बुद्धि प्राप्त की थी। वर्तमान समय के प्रसिद्ध डाकू ताँतिया भील की तरह वह भेष बदल कर हर जगह का पता प्राप्त कर लेता था और अपने से सम्बन्धित सब तरह के मामलों से जानकार रहता था। आश्चर्य की बात है कि एक ही मनुष्य किस प्रकार ये सब कार्य कर सकता है। मगर संभवता के जगत में हर बात की सम्भावना है। जो आदमी जिस प्रकार का मन और बुद्धि लाया है वह अपना कार्य किये हुये बिना नहीं रह सकता। हां, यह दूसरी बात है कि उसको किस सीमा तक सफलता होती है।

सिकन्दर उसकी चिन्ता में था और उसको स्वयं अपनी चिन्ता रहती थी। यदि वह इतना जानकार और चौकन्ना न रहता तो कभी संभव नही था कि हाड़ा वंश के बूंदी राज को हम आज तक ईश्वर की सृष्टी में जीवित और स्थिति देखते।

वह राजस्थान गया। कीकरी तो विजय किया। रतनगढ़ को अपने हाथों में लिया और दूसरे कार्य उसने क्या क्या किये यह हमें ज्ञात नहीं।

जब उसने देखा कि बीसलदेव शिवपुर से देहली चला गया। उसने अपनी सेना को साथ लिया और स्वयँ देहली की ओर कूच कर दिया। रतनगढ़ को तो उसने अपने छोटे भाई के सुपुर्द कर दिया। उसका दूसरा भाई और लड़का अब तक देहली में थे। उसकी बहन प्रेमविदा भी यहां ही थी। जब देहली का मार्ग अभी कई मंजिल बाकी था, वह भेष बदल कर वहाँ पहुंचा, ताकि सुगमता से पूछगछ कर सके कि उसके

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

बारे में राजधानी में लोगों के क्या विचार हैं। सबको तो यही ज्ञात था कि रायदेवा राजस्थान में है मगर यह देहली में उपस्थित हो गया। उसकी उच्च दृष्टि ने सहायता दी। उमरावसिंह की चालबाजी, बीसलदेव की बेबसी और सिकन्दर के इरादों से जानकारी पैदा करना आसान काम था। उसने सब कुछ सहज ही में जान लिया मगर किसी को कानोंकान उसके आने की सूचना तक नहीं मिली। दुर्गावती अपने बाप के साथ राजसी ठाठ में रहती थी। उमरावसिंह प्रतिदिन बीसलदेव को अपने कपट के जाल में फँसा रहा था। उसकी बड़ी भारी लालसा थी कि दुर्गावती की शादी उसके साथ करदी जावे मगर बीसलदेव का प्रण इतना दृढ़ था कि वह उसको निर्बल नहीं कर सकता था। फिर भी वह शतरंज की चाल चलता हुआ अवसर देख रहा था। यदि यह अवसर मिल जाता तो उचित या अनुचित कार्रवाई करने से कभी न चूकता मगर वह यह भी जानता था कि दुर्गावती अब बच्चा नहीं रही है। उसमें साहस और वीरता के गुण मौजूद थे। वह बाप को बेटी के फँसाने का साधन बना रहा था। यह सब हालात रायदेवा को देहली आने पर ज्ञात हो गये।

एक दिन दुर्गावती अपने महल के नीचे बाग में अकेली डोल रही थी। यद्यपि उसके राजस्थान के स्वतन्त्रता के जीवन यापन के ढंग में देहली के रहन सहन ने बहुत कुछ परिवर्तन कर दिया था मगर उसने यहां आकर भी घुड़ सवारी, तीर चलाने और तलवार चलाने के अभ्यास को बिलकुल ही नहीं छोड़ा था।

दुर्गावती—"मगर तुम कौम के माली नहीं मालूम होते।"

उसने कहा—'मैं कौमका राजपूत हूं। माली का काम जानता हूँ।'

दुर्गावती—"राजपूत तो माली का काम नहीं करते ?"

गङ्गाराम—"आवश्यकता सब कुछ करा लेती है।"

दुर्गावती—"मगर तुम्हारे हाथ पैर किसी और ही काम के लिये बनाये गये हैं। इनसे माली का काम लेना इनका निरादर करना है।"

गङ्गाराम—"यह सच है, मगर क्या किया जावे। जब और कोई काम नहीं है तो आदमी भूकों क्यों मरे ? कामकाज करके अपनी जीविका क्यों न कमाये ? काम करने में शर्म नहीं है। शर्म तो भीख माँगने में है। उत्तम खेती, मध्यम बान। निकृष्ट चाकरी भीख निदान।"

दुर्गावती के हृदय में खेती का शब्द सुनते ही अनेक प्रकार के विचार उत्पन्न हुये। दुर्गावती को पुरानी बातें याद आ गईं। शिवपुर में वह खेतों के मचान पर बैठी हुई पक्षियों से फसल की रखवाली किया करती थी। सूअर, हिरन, पाढ़े इत्यादि का आखेट करना इसका प्रतिदिन का काम था। वह घोड़े पर सवार होकर कोसों का रास्ता पूरा कर आती थी मगर देहली में आकर उसके हाथ पैर बँध गये थे। वह कुछ की कुछ बन गई थी, मगर हृदय वही था, स्वभाव वही था, चित्त वही, भाव वही, साहस वही। स्वतन्त्रता पसन्द, जंगली पखेरू पिंजरों में रह कर भी जंगली स्वतन्त्रता की इच्छा रखता है और उससे बाहर निकलने का इच्छुक रहता है। भक्त क्या चाहते हैं ? स्वतन्त्रता। ज्ञानी को किस वस्तु की खोज है ? स्वतन्त्रता की। इसी स्वतन्त्रता ही के दूसरे नाम भक्ति, मुक्ति, निर्वाण, परम पद और कैवल्य पद है। हर मार्ग के शब्द अलग अलग होते हैं मगर अभिप्राय वही है।

परन्तु एक बात है कि मैं घंटों में इतना काम कर लिया करता हूँ कि दूसरे आदमी दिनों में भी नहीं कर सकते।"

दुर्गावती मुस्कराई "यह शर्त बुरी है।"

गंगाराम—"फिर मुझे नौकरी करनी भी स्वीकार नहीं है। आज्ञा हो तो मैं दूसरी जगह जाकर नौकरी की खोज करूँ।"

दुर्गावती ने माली को ध्यान पूर्वक देखा। उसने क्या समझा इसका ज्ञान हमको नहीं है। वह बोली –"ठहरो, इतनी जल्दी न करो। मैंने यह तो नहीं कहा कि तुमको नौकर न रक्खूँगी।'

गंगाराम—"यह महारानी की कृपा है।"

दुर्गावती—'मैं महारानी नहीं हूँ। मैं एक अमीर राजपूत की लड़की हूं।"

गगाराम—'मेरी निगाहों में आप ही महारानी है। जहां रहिये वही है देशा, जो प्रति वाले वही नरेशा।"

दुर्गावती—'तुम कुछ लिखे पढ़े भी मालूम होते हो।"

गंगाराम—"ऐसे ही साधारण हिन्दी के अक्षर जानता हूं। उनकी बातचीत समाप्त नहीं होने पाई थी कि बीसलदेव भी बाग में आया। लड़की ने उससे कहा कि पिताजी आ रहे हैं। अच्छा हुआ अभी तुम्हारी नौकरी का फैसला हो जायगा। दुर्गावती बाप की ओर गई। गंगाराम को थोड़ा समय मिला तो बाग से दस बीस फूल तोड़ लिये और दो सुन्दर गुलदस्ते बनाये। एक तो दुर्गावती के हाथ में दिया और दूसरा बीसलदेव की भेंट किया। बीसलदेव ने लड़की से पूछा–" यह कौन है। उसने कुल हाल कह सुनाया। बीसलदेव नहीं चाहता था कि वह नया नौकर रक्खे क्योंकि वह उमरावसिंह का ऋणी हो गया था मगर लड़की की प्रसन्नता अधिक स्वीकार थी, मना न कर सका। गंगाराम से पूछा–"तुम क्या वेतन लोगे ?" उसने उत्तर दिया—"माली को पांच सात रुपये से अधिक वेतन नहीं

मिलता। मैं इसी में दिन काट लूँगा।" वह नौकर हो गया। उसी दिन उसने क्यारियों को ऐसी सुन्दरता के साथ सजा दिया कि बाप बेटी दोनों देखकर प्रसन्न हो गये और तरह तरह के गुलदस्ते भी बनाये। इस काम में वह निपुण था। दो एक घंटे काम के बाद वह चला गया मगर यह नियम हो गया। वह रोज आता और काम काज करके चला जाता।

चौदहवाँ प्रकरण

गंगाराम को दुर्गावती की आज्ञा

गुण का गाहक जगत है, अवगुण का कोई नाहिं।
गुणवंता सुख निधी है, अवगुनि भटका खाँहिं॥

गंगाराम की योग्यता ने दुर्गावती के हृदय में स्थान कर लिया। वह प्रतिदिन समय कुसमय आता। पेड़ों की काँट छांट कर जाता। क्यारियों को बनाता और सुन्दर गुलदस्ते बनाकर उसको दे जाता। बीसलदेव इसे साधारण आदमी समझकर इसकी ओर कम आकर्षित होता था। इसलिये न तो उसने गंगाराम की ओर ध्यान दिया और न गंगाराम ही को कुछ उसकी इतनी परवाह थी। जब तक किसी के बीच परस्पर सहानुभूति न हो तब तक हृदय में आकर्षण होना असंभव है, मगर दुर्गावती का हाल बाप के प्रतिकूल था। इसका चित्त गंगाराम की ओर आकर्षित था, और गंगाराम भी आदर भाव से पेश आता था। एक दिन गंगाराम जब काम काज कर चुका, दुर्गावती ने उसे बुला भेजा। वह आया और नमस्कार करके अदब के साथ खड़ा होगया। उसने कहा—"गंगाराम! आज मुझे तुम्हारी सेवा की अधिक आवश्यकता है। क्या अगर मैं

तुम्हें कहूं कि तुम यहां दो चार घन्टे ठहर जाओ, तो तुमको कोई आपत्ति तो नहीं होगी ?"

गांगाम ने दुर्गावती की इस बात को इस तरह सुना जिस तरह कोई आदमी शरबत के घूंट स्वाद लेकर पीता है। कैसे संभव था कि इस प्रकार की सभ्यता पूर्ण बात के स्वीकार करने से उसे इन्कार होता। कौन आदमी छोटे नौकर के साथ इस प्रकार बातचीत करता है। जब कोई आदमी किसी का नौकर हो जाता है, तो न केवल अपने मालिक का बड़प्पन और अपने तुच्छपने को स्वीकार करता है; किन्तु मालिक उसे बिलकुल पशुओं के समान समझ लेता है। अंतर केवल इतना रहता है कि पशु चौपाये होते हैं और नौकर दोपाया समझा जाता है। मनुष्य ईश्वर की सृष्टी में सर्व श्रेष्ट जीव है और इसकी श्रेष्ठता का पता हमको इसी एक बात में लग जाता है, कि दुनियाँ के दूसरे वर्ग न तो अपनी जाति को नौकर रखते हैं न अपना मातहत बनाते है, मगर यह मानव जाति की विशेषता है कि सबसे पहले वह अपनी ही जाति पर हुक्म चलाती है और फिर दूसरों को मातहत बनाने के प्रयत्न में लग जाती है। बहुत से कम स्वामी ऐसे मिलेंगे जो नौकर के साथ सभ्यता और शिष्टाचार का बर्ताव करते होंगे।

गंगाराम ने कहा—"मुझे आप की आज्ञा पालन करने में कोई आपत्ति नहीं है। कैसे सम्भव है कि मैं आपकी आज्ञा न मानूँ।"

दुर्गावती—"गंगाराम ! तुम्हारी बातें साधारण मनुष्यों जैसी नहीं हैं। जब से तुम यहाँ आये हो मैं प्रति दिन तुम्हारे रंग ढंग को देख रही हूँ। हाथ पैर की गढ़त बताती है कि तुम वह नहीं हो जो बने हुंये दिखाई देते हो।"

गंगाराम—"हां, मैं वह नहीं हूं। आपका विचार सत्य है।"

दुर्गावती—"फिर तुम कौन हो ?"

गंगाराम—"महारानी ! पहले तो मुझे स्वयं इस सवाल के उत्तर देने में आपत्ति है। दूसरे अगर मैं सच सच कहदूँ तो आपको विश्वास न आयेगा।"

दुर्गावती—'तुमने मुझे फिर महारानी कहा। अब यह शब्द फिर प्रयोग न करना।"

गंगाराम—"बहुत अच्छा ! धृष्टता हुई। यद्यपि मैं इसमें कोई दोष नहीं देखता, परन्तु आप यह बता दीजिये कि मैं आपको क्या कहूं ?"

दुर्गावती—" तुम मुझे बाई कहा करो।"

गंगाराम—"बहुत अच्छा ! फिर के लिये ध्यान रक्खूंगा"

दुर्गावती—"मैं तुम को साधारण आदमी नहीं समझती।"

गंगाराम—"मैं कौम का माली नहीं हूं। राजपूत हूँ। यह मैं पहले ही कह चुका हूँ कि मैं माली का पेशा करता हूं। समय समय की बात है। समय जो चाहे सो करालें।"

दुर्गावती—"यही तो कारण है कि मैं जानना चाहती हूँ कि तुम कौन हो।"

गंगाराम—"मैं आपका नौकर हूँ"

दुर्गावती हँसी—"अगर तुम पर कोई कष्ट हो तो मैं उसे दूर करने का प्रयत्न कर सकती हूँ। अगर तुम अच्छी नौकरी की इच्छा करो तो उसका भी प्रबन्ध किया जा सकता है।"

गंगाराम—"मेरे कष्ट के दिन उसी दिन समाप्त हो गये जिस समय आपकी दृष्टि मुझ पर पड़ी और मुझे उसी दिन अच्छी नौकरी मिल गई जिस दिन से मुझे आपकी सेवा का गौरव प्रदान हुआ। आपकी कृपा और आपकी सेवा के सिवाय मुझे और किसी बात की इच्छा नहीं है।"

दुर्गावती—'इन बातों को सुनकर अचंभित हुई। मैं

तुम्हारी योग्यता और सभ्यता की कायल हूँ।"

गङ्गाराम—"यह मेरा अहोभाग्य है। जिसका स्वामी उस पर इतना दयावान हो, तो उसे और क्या चाहिये।"

दुर्गावती—"यद्यपि यह सच भी हो, परन्तु मैं इससे अच्छा प्रबन्ध करा सकती हूँ।"

गङ्गाराम—"किस प्रकार ?"

दुर्गावती—"तुम देखते हो कि मेरे बाप के मिलने जुलने वाले सुल्तान के मन्त्री हैं। उमरावसिंह की बादशाह के दरबार में अधिक पहुंच है। रंजोरसिंह भी किसी विशेष प्रयोजन से आज कल देहली आये हैं, उनसे भी मेरे पिताजी का परिचय हो गया है। अगर कहो तो मैं तुमको अच्छी नौकरी दिलादूँ।"

गङ्गाराम—"यह रंजोर कौन है ?"

दुर्गावती—'यह मारवाड़ के सेनापती हैं।"

गङ्गाराम के हृदय पर उसके सुनने से विशेष प्रकार का प्रभाव उत्पन्न हुआ। दुर्गावती ने उसकी सूरत देखी। उसने क्षण मात्र में मन को रोक कर उत्तर दिया—"बाई जी ! सच्ची बात यह है कि सिवाय आपके अब किसी आदमी की नौकरी करने का इच्छुक नहीं हूं। हां, अगर किसी कारण से आप मुझे न रखना चाहें तो दूसरी बात है। मैं चला जऊँगा, मगर जाऊँगा भी शोक के साथ।"

दुर्गावती—"तुम्हारा विचार ग़लत है। मैंने तुमको अपने पास से अलहदा करने की नीयत से यह बात नहीं कहा।"

गङ्गाराम—फिर क्या इसका यह अभिप्राय है कि मैं आपके सिवाय दूसरे की नौकरी भी करूँ। एक नौकर दो स्वामियों को प्रसन्न नहीं रख सकता, और एक भक्त के दो भगवन्त नहीं होते। मैं आपका नौकर भी हूं और भक्त भी हूँ। आपकी आज्ञा सर आंखों पर ! मगर मुझे ऐसी आज्ञा न दीजिये कि मैं और

किसी के आधीन रहूँ। मुझे आप ही की नौकरी काफ़ी है।"

दुर्गावती हँसी, "तुमने अभी कहा था कि अगर यहां से अलग किये जाओगे तो तुम्हें शोक होगा। यह क्यों ?"

गंगाराम--"इसके दो कारण हैं। पहला यह है कि जीव जाये पर जीविका न जाये। दूसरे अच्छे मालिक सौभाग्य से हाथ आते हैं।"

दुर्गावती--"खैर ! मैं इस पर जोर नहीं देती, लेकिन मैं जानना चाहती हूँ कि तुम कौन हो। अगर कोई हानि न हो तो बतादो।"

गंगराम--"बाई जी ! मैं नया आदमी हूँ। आपकी मुझपर बड़ी कृपा है मगर मैं आपसे प्रार्थना करूँगा कि जब तक आपकी सेवामें मुझे कुछ दिनों रहने का अवसर न हाथ आये और आपको मेरा पूरा पूरा विश्वास न हो जाये, तब तक इस सवाल के जवाब देने के लिये मुझे विवश न किया जावे।"

दुर्गावती--"मैं विवश नहीं करती। पता नही क्यों मुझे भ्रम हो रहा है। इस कारण से मैंने तुम से यह सवाल पूछा। अगर तुमको कुछ आपत्ति है, तो जाने दो। मैं हठ भी नहीं करती।"

गङ्गाराम--"क्या आप मुझसे अप्रसन्न तो नहीं हो गईं ? मैं आपको अप्रसन्न करना नहीं चाहता।"

दुर्गावती मुस्कराई,--"नहीं मैं अप्रसन्न नहीं हूं। मेरा स्वभाव भी अप्रसन्न होने का नहीं है। अब अधिक देर तक मैं तुम से बात नहीं कर सकती, तुम आज शामको यहां ही रहना और खाना भी यहाँ ही खाना।"

गङ्गाराम--"बहुत अच्छा ! जो आपकी आज्ञा, परन्तु क्या मैं पूछ सकता हूँ कि मुझे क्यों ऐसा हुक्म दिया जाता है ?"

दुर्गावती हँसी--"जब तुम अपना हाल सुनाने से इतना दुराव करते हो, तो मैं क्यों तुमको अपने इरादे से परिचित

करूं। मैंने तो तुमको विवश नहीं किया। तुम क्यों पूछते हो?"

गङ्गाराम-"भूल हुई क्षमा कीजिये।"

दुर्गावती—"आज मेरी इच्छा है, कि तुम इन फटे पुराने कपड़ों को उतार दो। मैं तुमको नई धोती, मिरजई और पगड़ी देती हूँ। इनको पहन लो। आज तुमसे नई सेवा लेनी है।"

गंगाराम—"मैं आपका नौकर हूं। जो आज्ञा होगी उसी का पालन करूँगा।"

पन्द्रहवां प्रकरण

गङ्गाराम और महमान की सेवा

संस्कार को क्या कहें, यह दुख सुख का रूप।
कबहूं रंक विपरीत नर, कबहूँ चित का भूप॥

संध्या का समय हुआ। मकान में जगह ब जगह फतील सोज़ और कंडील जलाये गये। कमरे सजाये गये। गंगाराम को पता था कि वह क्यों ठहराया गया है। इसका पता उसे मालियों से मिल गया था। दिल में एक प्रकार की बेचैनी सी अवश्य थी; मगर वह इस प्रकार का दृढ़ विचार का आदमी था कि बाहरी बातों और प्रभावों को अपने ऊपर सवार नहीं होने देता था। वह जानता था कि उसके ठहरने का परिणाम क्या होगा।

थोड़ी देर के बाद एक मारवाड़ी बूढ़ा राजपूत सरदार जिसका नाम रणजोर सिंह था, कई आदमियों को साथ लिये हुये आया। बीसलदेव ने उसका स्वागत किया और उन सबको बैठक में बिठाया गया।

इस समय दुर्गावती ने गंगाराम को बुला भेजा। जब यह

उपास्थत हुआ, उसने कहा—"गंगाराम आज हमारे घर में पाहुने आये हैं। सब लोग काम काज में व्यस्त हैं। तुम्हारे लिये यह सेवा सुपुर्द की जाती है कि तुम पान इलायची पेश करो और ध्यान रखना कि पाहुनों को किसी प्रकार का कष्ट न हो।"

गंगाराम को काटो तो लोहू नहीं बदन में, मगर विवश! इसने प्रसन्नता से यह सेवा स्वीकार की। मगर जब जब वह पाहुनों के सामने आता उनके सरदार की दृष्टि उस पर रहती। उसने कई बार इच्छा की कि बीसलदेव से पूछे कि यह कौन आदमी है मगर देर तक रुका रहा।

जब खाने पीने से अवकाश मिला, बीसलदेव ने सरदार से अपनी लड़की दुर्गावती का हाल कहा। राजपूतों में पर्दे का चलन नहीं था और फिर लड़कियों को तो पर्दे में रखना बुरा समझा जाता था। जिस समय दुर्गावती बैठक में आई सरदार इसकी सुन्दरता और बनावट को देख कर दंग रह गया। बीसलदेव से इसकी सुन्दरता की प्रशंसा की। लड़की को पास बैठाया और उससे हँस हँस कर बातें करने लगा। गंगाराम उसकी मौजूदगी में वहां कई बार आया। सर्दार हर बार उसे ध्यानपूर्वक देखता रहा। बीसलदेव से न रहा गया। पूछा—"महाराज! आप गंगाराम को क्यों बार बार देखते हैं?"

सर्दार—"मुझे कुछ भ्रम सा हो रहा है।"

बीसलदेव—"यह भ्रम कैसा?"

सर्दार—"मुझे जान पड़ता है कि मैंने इस आदमी को कहीं देखा है मगर कह नहीं सकता यह कौन है?"

बीसलदेव—यह मेरा माली है और इसका नाम गङ्गाराम है। कई दिन हुये दुर्गावती ने इसको नौकर रख लिया है। आदमी बड़े काम का है और बड़ा शऊरदार है। आपने इसको कैसे देखा होगा। यह तो देहली में रहता है।"

सरदार—"यही तो आश्चर्य है। मारवाड़ देश में इसी की शकल का एक आदमी बहुत दिनों तक महाराजा का सेनापति था। वह बहुत बुद्धिमान और वीर था। जिस जिस ओर लड़ाई पर भेजा गया कभी असफल नहीं हुआ। बाद को वह वहाँ से चला आया। फिर मुझे उसके देखने का अवसर नहीं मिला। उसकी और गङ्गाराम की शकल में कोई अन्तर नहीं था। हां, इसके दाढ़ी है और उसके दाढ़ी नहीं थी। बाकी वही बनावट है। वही चाल ढाल है। यह मेरे आश्चर्य का कारण है।

बीसलदेव—"उसका नाम क्या था ?"

सर्दार—"उसका नाम रायदेवा था। वह पटहर का सरदार था।"

बीसलदेव हँसा—"पटहर का सरदार यहां माली का काम करने क्यों आता ! यह तो बड़े अचरज की बात है। मैंने सुना था कि रायदेवा को सुल्तान ने देहली बुला लिया मगर जब हम लोग यहां आये रायदेवा को बादशाह ने कीकरी के किले की लड़ाई सर करने के लिये फिर राजस्थान भेज दिया और अब तक वह वहां ही है। अगर आया होता तो मैं स्वयँ अवश्य मिलता। यह माली रायदेवा नहीं है। आप भ्रम में हैं। कहाँ रायदेवा कहां गङ्गाराम माली। कहां राजा भोज कहाँ भोजवा तेली।"

सरदार—"संभव है मैं भ्रम में हूं। दुनियाँ में एक शकल के कई आदमी हो सकते हैं और फिर मैं तो बूढ़ा आदमी हूं। मेरी आंखें ग़लती करती हों। मैं स्वयँ नहीं कह सकता कि क्या बात है ?"

बीसलदेव—"किसी दिन अगर संभव हुआ और आप पधारे तो मैं इसका हाल पूछ करके आपको बता दूँगा। अभी तक एक दिन भी मैंने उससे बातचीत नहीं की।"

सरदार—"मैं स्वयँ क्यों न उससे पूँछूँ ?"

बीसलदेव–"आपको अधिकार है मगर अच्छा यह है कि आप इसे अपने साथ ले जाइये। मैं आपको घर पहुँचाने के लिये कह दूँगा, लेकिन ऐसा न हो कि पटहर सरदार के धोखे में पड़ कर वह आपकी अज्ञानता पर हँसने लगे।"

बातें उस समय होती थीं, जब गङ्गाराम पान, इत्र और इलायची लाया करता था। दुर्गावती कान लगा कर सब सुनती रही। अन्तिम बार जब गङ्गाराम ने फिर हुक्का पेश किया, पान इलायची लाया सरदार ने बीसलदेव से बिदा मांगी।

बीसलदेव ने गङ्गाराम को बुला कर कहा—"तुम सरदार जी के साथ जाओ। उनको घर पहुंचा आओ। खाना यहाँ आकर खाना। कल मैं तुमसे कुछ बातें करूँगा।" बेचारा गङ्गाराम क्या करता !

सोलहवाँ प्रकरण

गंगाराम और रणजोरसिंह

बीती ताहि बिसार दे, वर्तमान चित दे।
अवसर मिला अमोल नर, जन्म सफल कर ले॥

गङ्गाराम पैदल था। रणजोरसिंह घोड़े पर सवार था। उसके माननीय साथियों में से सब घोड़ों पर सवार थे। नौकर चाकर बेशक पैदल थे। गङ्गाराम भी उन्हीं के साथ था। इस प्रकार बीसलदेव के घर से चल कर वह रणजोरसिंह के साथ डेरे में आया। रणजोरसिंह बादशाह का पाहुना था। किसी को यह पता नहीं था कि वह क्यों और किस प्रयोजन से देहली आया था।

अपने मुख्य डेरे में पहुंचकर रणजोरसिंह ने गङ्गाराम को भीतर बुलाया। वह निर्भयता से चला गया। रणजोरसिंह को नमस्कार किया और चुप खड़ा हो गया।

सरदार ने कहा—"रायदेवा!"

उसने उत्तर दिया—"हाँ, महाराज रणजोरसिंह जी!"

सरदार—"मैं तुमको आज किस हालत में देखता हूं?"

गङ्गाराम—"जिस दशा में मैंने जान बूझ कर अपने को बना रक्खा है।"

सरदार—"मेरे पास बैठ जाओ। आज तुम से बहुत बातें करनी हैं।"

वह सरदार के पास बैठ गया। "कहिये! क्या आज्ञा है?"

सरदार—"तुमने जब से मारवाड़ को छोड़ा हम सब लोगों को तुम्हारे वियोग का बहुत रंज रहा है। बाद को पता चला कि बादशाह ने तुम्हें कूटनीति से देहली बुला भेजा है और रायबंगो ने तुमको पटहर से निकाल दिया है।"

गङ्गाराम—"यह सब सच है और इस घटना की जड़ में सचाई है।"

सरदार—"तुमने देहली में आकर विचित्र रङ्ग ढंग बना रक्खा है।"

गंगाराम—"निस्संदेह यह ठीक है।"

सरदार—"ठीक तो यह है मगर तुम जैसे शेर मर्द के लिये यह वेष ठीक नहीं है।"

गंगाराम—"जो हो गया वह हो गया। क्या आपने मुझे शिक्षा देने के लिये बुलाया है? आप बड़े हैं। आपको अधिकार है जो चाहे कहलें। मैं पहले भी आपकी मातहती में था और अब भी मुझे अपना भारी कृतज्ञ समझिये। मैं शायद जीवन भर इसी दृष्टि से आपको देखता रहूँगा।"

सरदार—"तुम मेरे सामने बेटे के समान हो। मैं तुमको उस समय भी प्यार करता था। अबभी मेरे हृदय में तुम्हारे लिये स्थान है। मैंने शिक्षा देने के लिये तुम्हें नहीं बुलाया, किन्तु जब मैंने बीसलदेव के यहां तुमको देखा मेरे हृदय में नाना प्रकार के विचार उत्पन्न हुये। मेरे विचार तुमको साथ लाने का कारण हैं।"

गङ्गाराम—"आपकी क्या इच्छा है ? क्या आप मेरा भांड़ा फोड़ देंगे ?"

सरदार—"राम राम ! तुम कभी मुझ से या मारवाड़ देश के किसी राजपूत से ऐसी आशा न रक्खो, किंतु मैं तो यह चाहूँगा कि अगर तुमने पटहर को सदैव के लिये छोड़ दिया है, तो मारवाड़ हर समय तुम्हारा स्वागत करने को तैय्यार रहेगा। मैं अपने महाराज से सिफारिश करके तुमको वहां रखना चाहूँगा और तुम न केवल राजके मंसबदारों में प्रसन्नता पूर्वक सम्मिलित कर लिये जाओगे, किन्तु मैं प्रयत्न करूंगा कि तुमको वहां पर बहुत अच्छी जगह भी मिल जावे। मारवाड़ में तुमने जो सेवायें की हैं, वह हर प्रकार से आदरमान के योग्य हैं।"

गङ्गाराम—"यह आपकी कृपा है और आपकी ओर से मुझे हर प्रकार की आशा है, मगर मैं समझता हूँ कि इस अवसर पर आपने किसी और विचार से भी मुझे याद किया है और मैं उसे जानना चाहता हूं।'

सरदार हँसा "मैंने तुमको आज माली के भेष में पकड़ लिया।"

गङ्गाराम—"मेरे जीवनमें यह पहिला अवसर है। इससे पहिले कभी किसी को भाँपने का अवसर हाथ नहीं आया था। कहा जाता है कि मां की आंखें भूलचूक नहीं करतीं। वह

अपने बच्चे को चाहे किसी दशा में क्यों न रहे पहचान ही लेती हैं। आखिर मैं भी तो आपका लड़का ही हूं।"

सर्दार को बड़ी हँसी आई--"यह गुण कुत्तेमें भी है। वह अपने स्वामी को हर दशा में पहचान सकता है। तुम शायद इस दृष्टाँत को न समझ सकोगे मगर तुम्हारे पहले दृष्टांत से अधिक अच्छा है। तुमने मुझे मां कहा मगर बाप क्यों नहीं कहा।"

गंगाराम—'मेरे सवाल का अबतक उत्तर नहीं मिला।"

सर्दार—"रायदेवा ! उस सवाल का उत्तर स्वयं तुम्हारे हृदय में है। मुझसे तुम क्या कहलवाते हो।"

गंगाराम—'कुछतो कहिये।"

सर्दार—"मैं यह कहूँगा कि तमने बहुत अज्ञानता की। जिस उद्देश्य के लिये यह वेष धारण किया है उसकी पूर्ति इस प्रकार संभव नहीं है। अगर तुम अपनी असली दशा में होते तो सहज में ही उसको पूरा कर लिये होते।"

गंगाराम—"अब स्थिति को बदलने की आशा नहीं है। मूर्खता हो चाहे बुद्धिमानी, जो कुछ मैंने किया वह हो गया। अब पीछे को पैर हटाना नहीं है, परन्तु आपने यह नहीं कहा कि मेरा उद्देश्य क्या है और असंभव किस तरह पर है ?"

सर्दार—"जान बूझ कर सवाल करना अच्छा नहीं है।"

गंगाराम—"मैंने अच्छी तरह अभीतक नहीं समझा और वास्तव में आपकी बातों के अंतिम वाक्यों का अर्थ तो मेरी समझ में बिलकुल नहीं आया।"

सर्दार--"तुमसे अधिक आँखों वाला आदमी मैंने अपने जीवन में नहीं देखा है और अब भी मैं समझ रहा हूं कि तुम जानते हुये अनजान बनकर जानना चाहते हो।"

गंगाराम–"नहीं, यह तो ठीक है कि मुझे आपके संकेत की

कुछ कुछ समझ अवश्य है; मगर असंभव शब्द के बारे में मेरा ध्यान तक भी नहीं जाता।"

सर्दार—"अगर यह बात है तो मेरा कर्तव्य है कि मैं तुमको जानकारी करादूँ। जिस फूल के चुनने के लिये तुमने माली का वेष धारण किया है उसकी बाबत देहली में आमतौर पर प्रसिद्ध हो गया है कि उसे उमरावसिंह के गुलदस्ते में स्थान दिया जायगा या अगर वह फूल देने वाला वृक्ष है तो वह उमराव सिंह के ही बाग में लगाया जावेगा। उसका कई दिनों से प्रबन्ध हो रहा है।"

गंगाराम के कान खड़े हुये। उसने बहुत बार उमरावसिंह को बीसलदेव से मिलते मिलाते देखा था। उसे खटका भी होगया था। वह स्वयं टटोल में था मगर चूंकि वह नहीं चाहता था कि किसीको उसके देहली आने का पता मिले, इस लिये जान बूझकर न वह किसी से मिला और न अधिक हालात पूछ सका। अब जाकर उसे पता हुआ कि उमरावसिंह प्रतिद्वन्दी के रूप में उसके फूल पर हाथ बढ़ा रहा है। उसने सर्दार से पूछा—"यह पता अपको कैसे हुआ ?"

सर्दार—"देहली में कुल राजपूतों को इस बात से जानकारी है और बादशाह भी इस भेदको जानता है। क्या आश्चर्य कि वह स्वयं किसी दिन बीसलदेव से उसके लिये सिफारिश करे। इसी कारण से मैंने पहले ही तुम्हें कह दिया था कि तुम्हारे उद्देश्य में सफलता की आशा कठिन है।"

गंगाराम की आँखों में खून उतर आया, मगर वह क्रोध के कारण से नहीं था। वह क्रोधी नहीं था, किन्तु जब कोई विरोधी सामने आ जाता था, तो उसे और भी अधिक प्रयत्न करने का विचार उत्पन्न हो जाता था। यह दशा दो चार पल ही रही, संभल गया और सरदार से कहा—"परंतु सच्चे आदमी

को अपने बचन का पास होता है।"

सर्दार-"तुमने शायद यह नहीं सुना कि उमरावसिंह अपना स्वार्थ रुपये की सहायता से निकालना चाहता है। रुपये में बड़ी शक्ति होती है। जहाँ दूसरी शक्तियाँ काम नहीं देती हैं वहाँ रुपया काम कर जाता है। इसके सिवाय उसकी सहायता पर आवश्यकता के समय और शक्ति भी काम दे सकेगी। तीसरी बात यह है कि वहाँ मैंने तुम्हारा नाम भी कभी नहीं सुना और किसी को गुमान भी नहीं है कि तुम भी इसी धुन में हो।"

गंगाराम—"आश्चर्य की बात है। मैं ऐसा नहीं समझता।"

सरदार— "दुनियां स्वयं आश्चर्य का स्थान है। यहां जो कुछ होता है या हुआ करता है, वह भी आश्चर्य का विषय है, लेकिन क्या तुम बता सकते हो कि ऐसी दशा में तुम क्या काम करोगे?"

गंगाराम—"मैं इस समय आपसे कुछ नहीं कह सकता और न मुझे कुछ जानकारी है। अब तक किसी को यहाँ मेरे आने का पता नहीं है। मैं भेष बदलकर रहता हूं। मेरे साथियों के सिवाय कोई नहीं जानता कि मैं केवल अकेला ही देहली वापिस आगया हूँ। आप भी यह भेद किसी को न बतावें।"

सरदार—'बहुत अच्छा परन्तु अगर तुम उचित समझो तो मैं स्वयं बीसलदेव से तुम्हारी चर्चा करदूँ।"

गंगाराम—"जी नहीं, आप स्वयं जानते हैं कि मैं बच्चा नहीं हूँ और न मुझ में नातजुर्बेकार युवकों जैसे भाव है। मैं अपने संकल्प से किसी को जानकारी नहीं कराना चाहता। स्वयं दूर दूर रहकर देखूँगा कि इसका क्या परिणाम होता है। ऐसे मामलों में मुझे न सफलता की इतनी इच्छा है न असफल होने का भय है। एक विचार है कि जो किसी दूसरे आदमी के कहने से हृदय में उत्पन्न होगया। मैंने उसके लिये

प्रयत्न किया। अगर सफलता होती है तो अच्छा है और अगर नहीं होती है तो इसकी परवाह भी नहीं है।"

सरदार- -'यह बात आज मैंने तुमसे सुनी है। राजपूत ऐसे कामों में सरतोड़ प्रयत्न करते हैं बल्कि प्रायः मर मिटते हैं।"

गंगाराम—"प्रयत्न तो मैं भी करूँगा। प्रयत्न करने में कोई कमी न होने पायेगी, परन्तु मेरा प्रयत्न दूसरे प्रकार का होगा। सिवाय आपके किसी दूसरे आदमी तक को कानों कान मेरे इरादे का पता नहीं है। यह भी संयोग की बात थी कि आप मेरी नीयत को भांप गये, मगर मेरा भेद आपके हृदय में गुप्त रहेगा, इसका मुझे पूर्ण विश्वास है।"

सरदार – "अच्छा ! जो तुम्हारे मन में आये करो, परन्तु यह बता दो कि मारवाड़ चलकर रहने का इरादा है या नहीं ?"

गंगाराम—"कुछ कहा नहीं जा सकता। चूँकि आपकी हार्दिक सहानुभूति मुझ पर है, इतना अवश्य कहूंगा कि स्वतंत्रता पसंद चित्त बंधन की दशा से घबरा जाता है। जंगल के जानवर बस्ती तक में रहना पसंद नहीं करते। मैं भी जंगली आदमी हूँ और जंगलियों की सी मन बुद्धि वाला हूं।"

सरदार—'क्या दिल्ली बस्ती नहीं है और क्या बादशाह की निकटता को बन्धन नहीं कहा जा सकता ?"

गंगाराम—"यह सब ठीक है, परन्तु आप इससे यह नतीजा तो नहीं निकाल सकते, कि मैं सदैव इसी दशा में रहूँगा।"

सरदार—"सुनो जी ! तुम मेरे लड़के के समान हो। मैं तुमसे यह कह देता हूँ कि बादशाह की निगाह हर समय तुम्हारे ऊपर रहती है। उपाय यह किये जा रहे हैं कि तुम्हारे करने धरने व रहने सहने का पल पल का पता मिलता रहे। संभव है कि इसमें उसे पूर्ण सफलता न होती हो, क्योंकि तुम इस समय देहली में हो और बादशाह को अब तक सूचना नहीं

मिली है, परन्तु यहां तुम्हारा रहना भय से खाली नहीं है। मैं तुमको सावधान कर देना अपना कर्तव्य समझता हूँ।"

गंगाराम—"यह आपकी कृपा है। मुझे इन सब बातों का पता है और मैंने भेद जानने के कई साधन कर रक्खे हैं। लेकिन पटहर की दशा कुछ इस प्रकार की होगई थी कि मैंने देहली में आकर रहने ही में मसलहत समझी।"

सर्दार—"अब तुम कबतक देहली रहोगे ?"

गंगाराम—यह अन्न जल की बात है, अभीतक मैंने कोई ठीक निश्चय नहीं किया है। मेरे साथी आवें तब इस मामले पर विचार करूँगा। क्या आप अधिक दिनों तक देहली में रहेंगे ?"

सर्दार—"नहीं। मैं जिस प्रयोजन से आया था, वह पूरा हो गया। अब जल्दी वापिस जाऊँगा। अगर तुम राजस्थान की ओर आओ, तो मुझसे अवश्य मिलो मैं हर प्रकार से तुम्हारी सहायता करने को उद्यत रहूँगा।"

गंगाराम—'यह आपकी कृपा है। मैं जान सकता हूँ कि आपको दरबार में क्यों बुलाया गया था ?"

सर्दार—'यह कोई गुप्त बात नहीं है। सिकन्दर की इच्छा है कि वह कुल राजपूतों के साथ मेल जोल बढ़ाये। इसने जिस उद्देश्य से तुमको बुलाया था, उसी उद्देश्य से मुझे भी बुलाया गया था। मेवाड़ के महाराणा साहब के साथ भी बादशाह ने सम्पर्क उत्पन्न करना चाहा था, मगर उन्होंने युक्ति पूर्वक अस्वीकार कर दिया। उनको देहली के आधीन रहना स्वीकार नहीं था। मारवाड़ के महाराजा बड़े अवसर वादी और मसलहत से काम करने वाले हैं। इस कारण से मुझे यहाँ भेजा गया। मैंने बादशाह को संतुष्ट कर दिया और उसे विश्वास भी दिला दिया कि मारवाड़ उसकी मित्रता का दम भरेगा।"

गंगाराम—"अब अधिक विलंब हो गया है। मुझे जाने दीजिये। यदि फिर समय मिला तो मैं स्वयं सेवा में उपस्थित हूंगा अन्यथा अभी से क्षमा प्रार्थी हूं।"

सरदार ने हँसकर उसे विदा किया मगर एक साधारण माली का देर तक रणजोरसिंह के साथ बातचीत करना इस तरह की घटना नहीं थी जो टाल टूल करदी जाती। मारवाड़ी सरदार स्वयं आश्चर्य में थे और इन मारवाड़ियों के बीच आश्चर्य नहीं कि बादशाह के जासूस भी आकर मिल गये हों।

सत्तरहवाँ प्रकरण

गंगाराम और उमरावसिंह

बगला हँसा एक संग, मान सरोवर माँहि।
हँसा तो मोती चुने, बगला मछली खांहि॥

गंगाराम मारवाड़ी डेरा से वापिस आया। सर्दी की ऋतु थी। उसने उस दिन बीसलदेव के यहाँ खाना खाया। रात्रि अधिक बीत गई थी, अपने घर न जा सका। दूसरे नौकरों के साथ बैठकर देर तक उनकी बातें सुनता रहा। सब उमराव सिंह की उदारता की प्रशंसा करते थे। नौकर नौकर ही होते हैं। जो इनकी मुट्ठी गर्म करता है, वह उसकी तो बड़ाई करते हैं और प्रशंसा के पुल बाँधते हैं, मगर जो आदमी उनके साथ इस प्रकार की उदारता का बर्ताव नहीं करता तो वह उसकी शिकायत और निन्दा करने से भी नहीं चूकते। गंगाराम चुपके चुपके सब सुनता रहा इनमें इसके अपने मतलब की भी बहुत सी बातें थी। जी में तो आया कि वह उनसे और भी कुछ पूछे मगर चूँकि अब तक मेल जोल बढ़ाने में कमी की थी उसने

चुप रहने में ही भलाई समझी। आग प्रज्वलित थी। वह देर तक आग पर सिकता रहा। फिर नींद आ गई और वहाँ ही लेट रहा।"

दूसरे दिन सुबह के समय जब गङ्गाराम सोकर उठा उसे फिर घर जाने का साहस नहीं हुआ। उसने इच्छा की कि "आज बाग का काम अभी करके तब यहां से चलना चाहिये", और वह अपने काम में व्यस्त होगया। वह दो तीन घण्टे से अधिक वहाँ नहीं ठहरता था। जब उसने छुटकारा पाया उसी समय उमरावसिंह बीसलदेव से मिलने आया। मालुम होने पर बीसलदेव कमरे से बाहर आया और उसका हाथ पकड़ कर अंदर लेगया। गङ्गाराम उमरावसिंह को पहिचानता था। उमरावसिंह भी यद्यपि रायदेवा का नाम ही जानता था और सूरत शकल से जानकारी नहीं थी, मगर उसे पता नहीं था कि गङ्गाराम के भेष में रायदेवा बीसलदेव के घर माली का काम करने आया होगा। उसके मस्तिष्क में भी शायद इस विचार का उत्पन्न होना भी असंभव था। वह कमरे के अन्दर गया और जब दोनों बातचीत में व्यस्त थे, गङ्गाराम को जो समय मिला उसने दो चार ताजा फूलों के हाथों के गुलदस्ते बनाये। दो गुलदस्ते तो उसने दुर्गावती को भेंट किये जिसने हँस कर उन्हें उसके हाथों से ले लिये।

गङ्गाराम ने कहा—"यह दो गुलदस्ते आपके पिताजी के कमरे के लिये हैं।" दुर्गावती ने कहा-"मैं इस समय वहाँ नहीं जा सकती। तुम स्वयँ जाकर रख आओ।"

गङ्गाराम को पहले कुछ हिचक हुई। वह डरता था कि ऐसा न हो कि उमरावसिंह उसे पहचान ले क्योंकि पहले दिन जोधपुर के सरदार ने उसे इस भेष में पहिचान लिया था। फिर कुछ समझ कर वह कमरे के पास गया।

कान में भनक पड़ी—"क्या आपने बमौदा का नकशा तैयार करलिया है ?" इस सवाल का उत्तर दिया गया—"वह तैयार तो है मगर कल दूँगा।" फिर आवाज आई—"राय-देवा अब शीघ्र आने वाला है। राजस्थान से चले हुये उसे देर हो गई है। क्या आश्चर्य वह दो हीं एक दिन के भीतर यहाँ आ पहुँचे। उसके आने से पहले अगर बमौदा का नक़शा मिल जाय तो अच्छा होता।"

उत्तर देने वाले ने उत्तर दिया—"आपने यह नहीं बताया कि बमौदा के किले का नकशा आप क्यों माँग रहे हैं ?" आवाज ने कहा –"सिकन्दर की इच्छा है और आपको इतना पुरस्कार मिलेगा कि आप न केवल अपना ऋण ही चुका सकेंगे बल्कि मालामाल हो जाँयगे।"

गंगाराम के कान खड़े हुये। उसकी इच्छा नहीं थी कि बातचीत करने वालों की बातचीत सुनें। वह ऐसी आदत को मानव सभ्यता के विरुद्ध समझता था, मगर संयोग को क्या कहा जावे। उसने आवश्यकता से अधिक सुन लिया। पहले भी वह बादशाह के इरादे से अनजान नहीं था। अब इन बातों से उसे पता लग गया कि गहरा षडयंत्र रचा जारहा है। बातचीत करने वाले उमराव और बीसलदेव थे।

उसने चाहा कि द्वार खोल कर भीतर पहुंच जाऊँ मगर बीसलदेव की आवाज आई—"मेरे हृदय में रायदेवा के सम्मान के लिये स्थान हो गया है। आपने मुझे इस काम के लिये हठ पूर्वक विवश किया है। चूंकि मैं आपका कृतज्ञ हूँ, मना नहीं कर सकता। नकशा कल आपको दे दिया जावेगा ! कुछ अभी काम बाकी है। रात को बैठ कर पूरा.....।"

गंगाराम ने इस वाक्य के पूरा होने से पहले द्वार खोल दिया। इधर बीसलदेव चौकन्ना हो गया। उधर उमरावसिंह

के चहरे का रंग कुछ फीका हो गया। "चोर की डाढ़ी में तिनका।" बीसलदेव ने उसे देखकर कहा–"यह गंगाराम मेरा माली है।" फिर दोनों के मन अपने अपने स्थान पर आगये।

गंगाराम ने झुक कर नमस्कार किया और होंठ और भौंहों को इतना टेढ़ा कर रक्खा कि क्या मजाल कोई जानकार आदमी भी पहचान सके कि यह रायदेवा है। उसने एक गुलदस्ता बीसलदेव की भेंट किया और दूसरा उमरावसिंह को दिया।

गुलदस्ते अति सुन्दर थे। उमरावसिंह ने प्रशंसा की और गंगाराम को कुछ रुपया पुरस्कार देना चाहा। उसने हाथ बांध कर कहा–"यह सरकार की कृपा है। मुझे तो सरकार से बहुत कुछ पारतोषिक लेना है। जब समय आवेगा, मेरी इच्छा आप ही आप पूर्ण हो जायगी।"

उमरावसिंह–"क्या तू मुझे जानता है?"

गंगाराम–क्यों नहीं! सरकार को कौन नहीं जानता है। देहली में सरकार की तूती बोलती है। हुजूर मुझे बेशक नहीं जानते। निर्धनों पर अमीरों को नजर नहीं पड़ती, मगर निर्धन तो अमीरों को देखते हैं, और देखने की इच्छा रखते हैं।"

उमरावसिंह—"तुझे गुलदस्ता बनाना बहुत अच्छा आता है। अगर बादशाह तक तू पहुँच जाता, तो तू अवश्य शाही बाग़ का माली बना दिया जाता।"

गंगाराम—"मेरा भाग्य ऐसा कहां है। यही गनीमत है कि महाराज के यहाँ से मुझे टुकड़ा मिल जाता है और मैं इसी को बहुत कुछ समझता हूं।"

गंगाराम के शब्द और लहजा ठीक गँवारों के तुल्य था। सूरत शकल देखकर उमरावसिंह को पहले कुछ आश्चर्य तो अवश्य हुआ था मगर इसके कपड़ों, चालढाल, बिगड़ी हुई सूरत

और देहाती बोलचाल ने उसे धोखे में डाल दिया और राय-देवा को बिलकुल नहीं पहचान सका। कहने लगा–"क्या कभी तू मेरे महल में गुलदस्ते पहुँचायेगा।"

उसने उत्तर दिया–"ग़रीब का और काम ही क्या है। आज्ञा की देर है। जब आज्ञा हो, मैं उपस्थित हूंगा।"

उमरावसिंह—"कल शाम के समय मेरे यहाँ बीसलदेवजी का निमन्त्रण है। तू अवश्य आना और अच्छे गुलदस्ते बना लाना।"

गंगाराम—"सरकार के यहाँ कितने पाहुने होंगे। मैं इसी गिनती के अनुसार गुलदस्ते बना लाऊँ और मजलिस के लिये तो बड़े गुलदस्ते अवश्य ही लेता आऊँगा।"

उमरावसिंह–"मेरे यहां आम दावत नहीं है। केवल बीस-लदेवजी आयेंगे। इस लिये दो तीन गुलदस्ते काफी होंगे। क्या तुझे मेरे मकान का पता मालूम है?"

गङ्गाराम–"सरकार तो सूर्य्य की तरह प्रकाशित हैं। सरकार के मकान का पता किसको मालूम नहीं है। मैं कई बार सरकार के कमरे में भी जा चुका हूं। हां, सरकार ने न मेरी ओर दृष्टि की और न मुझसे आज की तरह बातचीत की।"

उमरावसिंह को आश्चर्य हुआ। उसे याद भी नहीं आया कि कभी उसने गङ्गाराम को देखा भी था या नहीं। उसने कहा "अच्छा! कल एक पहर रात बीते मेरे यहाँ अवश्य आना। मैं तुझे देखकर प्रसन्न हूंगा, और जो कुछ तू पारितोषिक मांगेगा खुशी से दूँगा।"

गङ्गाराम–"ईश्वर सरकार को सलामत रक्खे। कल अवश्य हाजिर हूँगा। इनाम का ऐसा अवसर प्रति दिन थोड़े ही हाथ आता है। मेरा भाग्य जाग उठा है कि आज सरकार का दर्शन मिल गया। मेरे दुख दरिद्र यों ही दूर हो गये।"

गङ्गाराम ने दोनों सरदरों को नमस्कार किया और कमरे से बाहर आकर दरवाजा भेड़ दिया। मन में सोचता हुआ बीसलदेव के घर से अपने निवास स्थान की ओर चला गया। दूसरे दिन जब वह आया तो उसने मालियों से मिलकर बहुत सी बातें पूछीं जिनका उसे बिलकुल ध्यान नहीं था। दुर्गावती और बीसलदेव ने हँस कर आश्चर्य से कहा—"आज क्या बात है कि गङ्गाराम यहाँ इतनी देर तक ठहरा हुआ है।" उसने जवाब दिया—"हुजूर! आज शाम को राजा उमरावसिंह के यहाँ गुलदस्ते पहुँचाने हैं। अच्छे अच्छे फूल चुनना और अपनी कारीगरी की निपुणता दिखानी है। इस कारण से मैं यहां ठहरा हुआ हूँ।"

बात भी सच थी, सबको विश्वास आगया। उसने कई गुलदस्ते तैयार किये। दो चार तो दुर्गावती और बीसलदेव को दिये। बाकी टोकरी में रखकर अपने घर लेगया।

अठारहवाँ प्रकरण

गंगाराम और शेर की मांद

मक्खी बैठी शहद पर, पंख गये लपटाय।
हाथ मले अरु सिर धुनें, लालच बुरी बलाय॥

रात होगई। बीसलदेव उमरावसिंह के घर गया। इनके घर के बीच में थोड़ी सी दूरी थी। गंगाराम और गंगाराम के गुलदस्तों की इनकी दृष्टि में क्या इज्जत थी, जो प्रतीक्षा करने का कष्ट उठाते। गुलदस्ते की आज्ञा एक साधारण बात थी मगर गंगाराम को संतोष कहाँ! वह तो किसी प्रकार अवसर की ताक में लग रहा था। कल उसको बहुत भेद की बातों का

पता लग गया था। रणजीतसिंह राठौर ने भी कई ऐसे समाचार सुना दिये थे, जिनके कारण उसे आगे बढ़कर देखना था कि षडयंत्रकारी क्या चाल चल रहे हैं। उमरावसिंह के महल में उसे दो बार आने का अवसर मिल चुका था। जब अंधेरी रात हुई, वह दो तीन आदमियों के साथ धीरे धीरे हाथ में टोकरा लिये हुये राजा के मकान की ओर बढ़ा। द्वारपाल ने फाटक पर रोका। उसने कहा कि मैं बीसलदेव का माली हूँ। राजा साहब ने मुझसे गुलदस्ते मांगे थे। थोड़ी देर होगई है। तुम मुझे न रोको। मैं स्वयं उनको यह भेंट करूँगा। मेरे मालिक यहां पहले से ही आये हुये हैं। द्वारपाल को उमरावसिंह और बीसलदेव के मेल जोल का पता था। नौकर सदा अपने मालिकों के हृदय को देखा करते हैं। वह महलों की चोटी के हवाई कौवे होते हैं। जिधर को वायु का रुख होता है, उसी ओर स्वयं भी मुड़ जाते हैं। यदि वायु चारों ओर से चलती है, तो फिर वह ऊपर नाचते हुये इस प्रकार का खेल दिखाते हैं कि लोग देख देखकर आश्चर्य में पड़ जाते हैं। द्वारपाल हँसा—"बहुत अच्छा! अगर यह बात है, तो तुम जाओ। सामने बैठक में महाराज तुम्हारे मालिक के साथ बैठे हुये हैं।" गंगाराम के साथी तो वहां ही द्वारपाल के पास ड्योढ़ी में बैठकर आग सेकने लगे और यह बेखटके बैठक की ओर बढ़ा। द्वार बन्द था। वहां और कोई आदमी नहीं था। गुप्त मंत्रणाओं के अवसर पर नौकरों तक को आज्ञा नहीं होती कि आस पास बैठ सकें। द्वारपाल की बेपरवाई सम्भव है संयोग से हुई हो। उसने इसका लाभ उठाया। वहां धीरे धीरे आया और दरवाजे से अपने कान को लगाया। दोनों बात चीत में व्यस्त थे।

एक ने कहा—"नकशा तो हाजिर है। मैंने हृदय कठोर

करके इसे बनाया है। मुझे इसके बनाने में जो कष्ट हुआ है वह मैं ही जानता हूँ।"

दूसरा बोला—"विश्वास रखिये। इस नकशे की बदौलत आपकी हार्दिक कामना पूर्ण होगी।"

उसने कहा—"चित्त को क्या करूँ वह बेचैन हैं। हृदय चुटकियां लेता है। बीसलदेव ने कभी ऐसी गद्दारी नहीं की।"

दूसरे ने उत्तर दिया—"गद्दारी कैसी! बमौदा से तो आपका कोई सम्बन्ध नहीं है। फिर रायदेवा यहां आयगा और शाही सेना वहाँ पहुंचकर अपना काम करेगी।"

वह बोला—"मुझे आशा नहीं है। रायदेवा बला का आदमी है। आप यह न समझें कि कोई आदमी सरलता से शेर की माँद में पहुँचने का साहस कर सकेगा। बमौदा का किला बहुत दृढ़ है और एक एक हाड़ा जानपर खेलते हुये इसकी रक्षा करेगा।"

इसने क़हक़हा मारा—"देखा जाये, अगर मेरा नाम उमरावसिंह है तो मैंने जिसको प्रारम्भ किया है, उसे अधूरा न रहने दूँगा और आपका पुत्र कहलाने का अधिकार प्राप्त करूँगा।" अभी कठिनता से यह शब्द मुख से निकले ही थे कि गंगाराम ने द्वार खोल दिया। नमस्कार किया। गुलदस्ते भेंट किये यह दोनों आश्चर्य के चित्र से बन गये। उनको आशा नहीं थी कि किसी अन्य व्यक्ति को बिना आज्ञा भीतर आने का साहस होगा। उमरावसिंह यद्यपि पहले कुछ घबरा गया, मगर हँसकर उसने कहा—"गंगाराम! तुमने आने में बड़ी देर की। मुझे बहुत राह देखनी पड़ी।"

गंगाराम—"सरकार जानते हैं कि राज दरबार में आते हुये हम गरीबों को कठिनाइयां पेश आती हैं। मैं अपने साथियों को लेकर इधर आया। द्वारपाल ने रोकना चाहा। उसे देर तक

समझाता रहा। अब हाजिरी का अवसर मिला।"

उमरावसिंह ने गुलदस्ते हाथ में लिये। उसकी प्रशंसा की। इसके बाद कहा–"अब तुम चलकर बाहर ड्योढ़ी पर बैठो।"

गंगाराम—"हुजूर आज्ञा दें तो मैं गुलदस्तों को अपने हाथ से सजाकर रख दूँ।"

उमरावसिंह—"बहुत अच्छा! ऐसा ही करो।"

गंगाराम मुँह से बातचीत कर रहा था, मगर आंखें किसी दूसरी ओर थीं। उसने बमौदा के किले के खुले हुये नक्शे को सामने ही रक्खा हुआ देखा। पास में अँगीठी रक्खी हुई थी। गुलदस्तों के सजाने के बहाने उस कागज पर हाथ बढ़ाया। बिजली के कौंधे को तो प्रत्यक्ष होने में देर भी लगती है, मगर उसके हाथों को कागज के उठाने और जलती हुई अँगीठी के अन्दर डालने में कुछ भी देर नहीं लगी। वह भक से जल उठा। उमरावसिंह के क्रोध का पारा हद दर्जे पर पहुँच गया। उसने चाहा कि जलते हुये कागज को अँगीठी से उठा ले। गंगाराम आगे आया। हँसकर कहा–"सरकार सर्दी बहुत पड़ रही है जरा आग को तेज हो जाने दीजिये। सरकार बड़े आदमी हैं। ईश्वर ने नाना प्रकार के गर्म कपड़े दे रक्खे हैं। मुझ गरीब को देखिये देह पर गाढ़े तक के साबित कपड़े नहीं हैं। तनिक मुझे तो आग सेक लेने दीजिये।"

उमरावसिंह—"कमबख्त! बेशऊर, असभ्य और धृष्ट! हटजा।"

गंगाराम–"सरकार यह जल जाये और मैं हाथ सेक लूँ तो अभी चला जाऊँगा। मैं यहाँ रहने के लिये तो नहीं आया।"

उमरावसिंह क्रोध में आकर उठ खड़ा हुआ। उसने मारने के लिये हाथ उठाया।

गंगाराम बोला—"सरकार ! बड़े आदमी तुच्छ नौकरों पर हाथ नहीं उठाते। आप राजा हैं दुनियाँ आपको क्या कहेगी ! कुछ आपको दुनियां का भी भय है या नहीं। इस कागज को तो जलकर राख हो जाना चाहिये अन्यथा यह सरकार के अपयश का प्रमाण सिद्ध होगा। इसे कोई शक्ति इस समय जलने से नहीं रोक सकती, क्योंकि गंगाराम शारीरिक बल के लिहाज से सरकार की अपेक्षा बलवान है।"

उमरावसिंह—और बीसलदेव के कान खड़े हुये।

उमरावसिंह ने अपने क्रोध को शान्त कर लिया। "तू नौकर नहीं है। नौकर के भेष में कोई और ही आदमी है।"

गंगाराम—"सरकार की बुद्धि की गम और समझ बढ़ी चढ़ी है।"

उमरावसिंह—"तू नौकर नहीं है न माली है।"

गंगराम-"मैं सरकार के आकृति विज्ञान (कयाफा शनासी) का खंडन नहीं कर सक्ता।"

उमरावसिंह—"तू कौन है ?"

गंगाराम—' सरकार मैं एक छोटा राजपूत हूँ।'

उमरावसिंह-"अफसोस ! तूने मुझको कहीं का नहीं रक्खा।"

गङ्गाराम—' मैंने इस समय वह काम किया है कि अगर कोई गुण ग्राहक होता तो न केवल शाबाशियाँ देता, किन्तु पीठ ठोक कर मालामाल कर देता। एक ओर मैंने अति सुन्दर फूलों के गुलदस्ते पेश किये, दूसरी ओर इस जलते हुये कागज की लपटों से फुलझड़ी का खेल दिखा दिया और सरकार ने मुझे यह पुरस्कार दिया कि गलियां दीं। मारने को उठे। क्या सब राजपूतों को यही पुरस्कार दिया जाता है ?"

उमरावसिंह और बीसलदेव दोनों आश्चर्य के चित्र बन गये। धन के पुजारी उमराव ने कहा—"मैंने इस कागज के लिये

कितने रुपये खर्च किये, कितनी युक्तियां कीं और यह क्षणमात्र में जला दिया गया। मेरी आशा के हवाई किले इस प्रकार नष्ट कर दिये गये कि जिसकी कल्पना भी नहीं थी।"

गंगाराम—"सरकार चिन्ता न करें। रुपया कौड़ी कौड़ी हिसाब करके सरकार के खजांची के पास पहुँचा दिया गया है और हवाई किले की जड़ ही कहां पड़ी है जो वह अधिक देर तक ठहर सकती। इनका ऋण चुक गया। यह स्वतन्त्र हैं और दुर्गावती पर आपका कोई अधिकार नहीं है। वह तो उसकी होगी जिसने रतनगढ़ का किला विजय कर लिया है और समय पर अपने अधिकार में लेगा। फिर भी बीसलदेव को स्वतन्त्रता है कि यदि वह किसी दूसरे अधिकारी को देना चाहें तो देदें।"

उमरावसिंह समझ गया। बीसलदेव की आंख खुल गई। उसके चहरे से शर्म के मारे ऐसे कठिन जाड़े की ऋतु में पसीनों की धार जारी हुई। कौन जाने उसकी आंखों से गैरत और लानत के आंसू भी टपके होंगे, मगर वहाँ कौन देखने वाला था जो उधर ध्यान देता।

उमरावसिंह—'तुम शेर की मांद में आये हो। तुम्हारा वापिस जाना अब कठिन है।"

गङ्गाराम—"सरकार तो केवल अमीरों के शेर हैं। अमीरों के शेर तो भाड़े के टट्टू होते हैं। प्रायः अमीरों के कालीन और गलीचों में शेरों के चित्र बने रहते हैं। क्या वह शेर हैं। शेर तो जीवित मौजूद हैं जिसके दहाड़ने का शब्द सुनकर सबके कलेजे पानी पानी हो जाते हैं। जो आदमी इस साहस के साथ किसी के घर में घुसता है, उसमें कुछ न कुछ विशेषता भी हुआ करती है। गंगाराम माली के बेलचे हर समय उसके हाथ में रहते हैं और उसके साथी क्यारियों के उलटने पलटने की कला में निपुण होते हैं।"

उमरावसिंह—अफ़सोस ! मेरी आँखों पर परदा पड़ गया था। मैं तुमको जानता और पहचानता हूँ। कल भी मुझे संदेह हुआ था, मगर धोखे में आगया। आज आंखों के सामने से परदा उठ गया।"

गंगाराम—"इस पर्दे का उठना मेरे, आपके और इनके लिये और सबके लिये मंगलकारी सिद्ध हुआ। सरकार अपनी जगह पर बैठ जायें। मेरी एक दो बातें सुन लें। अगर अधिक बात चीत करते हैं तो वह न केवल अपयश और अपमान ही का कारण होगा, किन्तु संभव है देहली की यह गली लाशों से पट जाये और कूचों में रक्त की धारा वह निकलें। तनिक संकेत करने की देर है।"

उमरावसिंह डर गया। चुपके से बैठ गया। उमरावसिंह ने कहा—"कहो क्या कहते हो। मैं तुम्हारी बातें ध्यान पूर्वक सुनूंगा।"

गंगाराम—"तो सुनो, इस दुनियां में मां बाप के कृतघ्नी, विवाहिता स्त्री को बिना अपराध के त्याग देने वाले और गाय और ब्राह्मण तक की हत्या करने वाले के पाप का प्रायश्चित हो सकता है, परन्तु देश, जाति और भाइयों से ग़द्दारी या नमक हरामी करना घोर पाप है जिसके प्रायश्चित का हिन्दू शास्त्र में कहीं भी उल्लेख नहीं आया है। अगर मेरी बात पर विश्वास न हो तो मनुस्मृति, याज्ञवलक्य स्मृति, नारद स्मृति, पाराशर स्मृति अथवा अन्य स्मृतियों को देख कर अपना विश्वास कर लीजिये। ईश्वर सब को क्षमा करता है मगर क़ौमी ग़द्दार और देश के साथ बेवफ़ाई और नमक हरामी कहने वाले के पाप कभी क्षमा नहीं किये जाते हैं। वह रौरव नर्क में पड़ता है और नाना प्रकार की यातनायें सहता रहता है।

वह हत्यारे मक्कार, चोर और छलिया से भी अधिक घृणा के योग्य हैं। जयचंदने शहाबुद्दीन के हाथ अपने देश को बेच दिया। आज कौन हिन्दू है जो उठते बैठते उसको गालियां नहीं देता। जो आदमी अपने देश का नहीं हुआ, शत्रु तक ऐसे नीच आदमी का विश्वास नहीं कर सकते। पृथ्वीराज चौहान ने अपना सर देश प्रेम की तलवार के हवाले किया, आज तक हम सब लोग उसकी वीरता पर गर्व करते हैं और अन्तः करण से हर समय आशीर्वाद देते रहते हैं। जैचन्द ने देश बेचने का अपराध किया। उसपर शैतान से अधिक हर आदमी धिक्कारता है। मित्रों की मित्रता के हक़ को बेचना बुरा है। किसी विश्वास करने वाली स्त्री की आबरू बिगाड़ना भारी पाप है। बाप की हत्या, स्त्री और मां पर हाथ उठाना भी बुरा है, मगर देश की ग़द्दारी और क़ौमी बेवफाई सबसे अधिक घृणा योग्य और सबसे बड़ा और बुरा पाप है। निजी लालच और हबिस में पड़कर आदमी अत्याचार और कपट कर्म कर जाता है। संभव है कि वह फिर संभल कर आदर और मान वाला बन जाये, लेकिन इतिहास के पृष्ठों में ऐसे एक भी व्यक्ति का नाम नहीं आता जिसको स्वयं उसकी संतान आदर से याद करती हो। अब जो हो गया सो हो गया, अब आगे के लिये अपने जीवन को सुधारने की चिन्ता करनी चाहिये।"

उमरावसिंह और बीसलदेव पर भय सवार हो गया। दोनों समझ गये कि वक्ता कौन है, मगर दोनों में से एक को भी साहस नहीं हुआ कि उसकी बात काटें।

गङ्गाराम ने उमरावसिंह से कहा—"गुलदस्ते मैंने सरकार की भेंट किये। इसका पारितोषिक तो मुझे क्या मिलना था। मुझे कुछ लेने के बदले उलटे देना पड़ा जिसकी गवाही कल आपका ख़ज़ान्ची देगा। अब सरकार यह करें कि बीसलदेव

को इसी समय उसके घर भेज दें। दावत को तर्क करें इस घटना की कानों कान किसी को पता न होने पाये, इसका ध्यान रहे। मेरे आदमी बाहर मेरी प्रतीक्षा में होंगे। अब मुझे जाने की आज्ञा प्रदान हो।"

बीसलदेव ने उमरावसिंह की आज्ञा को आवश्यक नहीं समझा। वह उठा। फाटक तक उमरावसिंह पहुँचाने आया। वह अपने निवास स्थान की ओर गया और गङ्गाराम भी वहाँ से अदृश्य हो गया।

उन्नीसवाँ प्रकरण

गङ्गाराम और बाप बेटी

सोच समझ कर पग धरो, अति टेढ़ी है राह।
बिना विवेक विचार के, कभी न हो निर्वाह॥

उमरावसिंह की दशा अवर्णनीय थी। वह लाज के मारे खा पीकर सो रहा। जी में तो आया कि बादशाह को जाकर राय-देवा के देहली में रहने का पता दे, मगर रात अधिक हो गई थी और फिर गंगाराम माली कह भी गया था कि इस घटना का किसी को कानोंकान पता न होने पावे।

इसके सिवाय उसका कौन विश्वास करता–"रायदेवा बुरी बला है। कौन जाने उसके आदमी कैसे वेष धारण किये हुये कहाँ कहां रहते होंगे। उस समय इसके हृदय में यह संदेह भी हो गया कि कहीं उसके साथी स्वयं उसी के महल में न रहते हों। कपटी आदमी का दिल ही कितना होता है। वह सोच समझ कर सो रहा, और अपनी विवशता और अपमान के स्वप्न देखा किया।

बीसलदेव घर पर आया। चेहरे का रंग फीका! मुख पर हवाइयाँ उड़ती हुई! अपने आपको धिक्कारता हुआ कि रायदेवा का यह उपकार रतनगढ़ के क़िले को शत्रुओं के हाथ से निकाल लिया और मेरा यह नीच व्यवहार! जब वह घर पहुँचा, दुर्गावती जागती थी। बाप की शकल देखी। पूछा कि क्या हाल है। उसने कहा कि कुछ नहीं। तबियत कुछ खराब होगई है।

बेटी ने कहा-" सो रहिये। वह सोने से सँभल जायगी।" मगर अभी तक सोने का प्रबन्ध भी नहीं हुआ था कि एक नौकर ने आकर खबर दी—"गंगाराम माली आया है और कुछ ज़रूरी बात कहना चाहता है।"

बीसलदेव ने उसे अन्दर बुला लिया। दुर्गावती से कहा—"तुम यहाँ न रहो।" गंगाराम से बोला-"कहो क्या कहते हो। मैं समझ तो गया कि आप स्वयं रायदेवा हो मगर मैं आपके मुख से आपका नाम सुनना चाहता हूँ।"

गंगाराम—"आप गलती पर हैं। मैं रायदेवा का भाई हूं। रायदेवा रतनगढ़ के क़िले में है। वह अभी राजस्थान से नहीं आया। अगर वह देहली आगया होता तो क्या किसी को ज्ञात न होता।"

बीसलदेव—"मैं कैसे विश्वास करूं।"

गंगाराम—"मेरी शकल देखो। मैंने ही शिवपुर में आपको बचन दिया था कि देहली में जाकर रायदेवा को आपका संदेशा सुना दूँगा। उस समय मेरे डाढ़ी थी। अब डाढ़ी मैंने मुंड़ाली है। देहली में आकर तुर्कों का रङ्ग ढंग मुझे पसंद नहीं आया। मैंने रायदेवा को सब कुछ सुना दिया। कीकरी की लड़ाई के बहाने से वह राजस्थान गया। वहां से निबट कर पठानों के हाथ से रतनगढ़ के क़िले को छीन लिया और आपकी बाट देख रहा

है। आप तुरन्त जाइये। वह रतनगढ़ का क़िला आपको दे देगा और तब देहली वापिस आयेगा"

बीसलदेव साधारण बुद्धि का था। उसने गंगाराम की बात का विश्वास कर लिया, मगर कहने लगा-'मैं यहाँ से कैसे जाऊँ और कब जाऊँ। अगर बादशाह से बिना आज्ञा लिये हुये जाता हूँ तो मेरे पीछे ही सेना चल देगी और अगर आज्ञा लेने का इरादा करता हूँ तो मुझे कभी आज्ञा नहीं दी जायगी। मेरी हालत देहली में कैदी की होगई है। जिस प्रकार कोई चतुर शिकारी किसी पखेरू के पंख व बाल नोंचकर अपने मकान के आंगन में छोड़ देता है और उसके उड़ने की ओर से निश्चिन्त हो जाता है, वैसे ही मैं भी पंगु और नोंचा खसोटा हुआ बेपर का पखेरू हूँ। मैं ही कुछ अपना हाल जानता हूँ या वह शिकारी जानता है जिसने मुझे अपने जाल में बुरी तरह फँसा लिया है।"

गंगाराम—"मुझे हर बात का पता है। फँसाने वाले फँसाते हैं। छुड़ाने वाले छुड़ाते हैं। यहाँ बन्धन और मुक्ति दोनों प्रकार के नियम काम करते हैं। जहां बन्धन है, वहाँ ही मुक्ति है। जहां मुक्ति है वहाँ ही बन्धन है। अब आपको हर प्रकार की स्वतंत्रता है।"

बीसलदेव-"क्या अच्छा होता कि आपकी बात सच होती।"

गंगाराम—"अधिक बातचीत करने का अवसर नहीं है। आपके हृदय में जो-जो विचार हैं, उन सबका प्रतिबिम्ब मेरे दिल में मौजूद है। मैं जान बूझकर इस समय इरादा करके आया हूं, ताकि आपको न स्वयं बोलने का समय दूँ और न व्यर्थ स्वयं बातचीत करने में समय नष्ट करूँ। अगर आज देहली से निकल गये तो रतनगढ़ का किला आपको मिल जायगा और अगर आज यहां से जाने में तनिक भी भूल की

तो अभी तक तो आपके बाल और पर नोंचे गये हैं, कल आप पिंजड़े में बन्द कर दिये जायेंगे। उमरावसिंह खिसियाना हो गया है। मैंने उसका ऋण चुका दिया। इस ओर से आप विश्वास रक्खें। बाहर मेरे आदमी सहायता के लिये उद्यत हैं। आप दोनों थोड़ा थोड़ा खाना खालें और जब सोता पड़ जाय, यहां से घोड़ों पर सवार होकर निकल जांय। मैं भी कुछ दूर तक आपका साथ दूँगा। मेरा घोड़ा बहुत तेज रफ्तार है। वह एक दिन में कई मंजिलें तै कर सकता है। आपके लिये जाने का प्रबन्ध कई दिनों से कर लिया गया है। आप अपनी लड़की को लेकर भाग जाइये और आज की तमाम बातें दुर्गावती को कुछ भी न सुनाइये। यद्यपि वह स्थिर स्वभाव की व बड़ी साहसी है, मगर फिर भी स्त्री है। मैं केवल यह कहने आया हूं।"

बीसलदेव—"अगर आप आज्ञा दें तो मैं दुर्गावती को बता दूँ कि रतनगढ़ का स्वतंत्र करने वाला और उसके हाथों का अधिकारी कौन आदमी है। इसके सुनने से उसके चित्त में नया साहस आयेगा।"

गंगाराम हँसा—"अगर आप इसे इतना जरूरी समझते हैं तो कह दीजिये। इसमें कोई हानि नहीं है।"

बीसलदेव ने लड़की को बुलाकर बोला—'बेटी! जिस आदमी ने मुझे रतनगढ़ का रत्न देना किया है, और जिसने उसे पहले से अपने अधिकार में कर रक्खा है, वह पटहर का प्रसिद्ध सरदार रायदेवा है। उसी की बदौलत तेरा बाप उमरावसिंह के ऋण के भार से छुटकारा पागया और वही रायदेवा हम दोनों को देहली के संगीन किले से स्वतंत्र कर रहा है। मैंने तुझे उसी को देने की प्रतिज्ञा करली है और मेरी दृष्टि में तू आज से उसकी अर्धांगिनी हो चुकी।"

दुर्गावती ने गंगाराम को आश्चर्य और प्रेम की दृष्टि से देखा। गंगाराम ने बीसलदेव से कहा–"आपने अन्तिम शब्द बिना आवश्यकता के कहे। रायदेवा शायद उसे पसन्द न करेगा। वह अधेड़ है। दुर्गावती अभी युवा है। जिस व्यक्ति के मन और बुद्धि स्वतंत्रता प्रिय हैं वह सहन नहीं कर सकता कि कोई दूसरा व्यक्ति इच्छा के विरुद्ध किसी बात के बन्धन में डाला जाय। हाँ, रतनगढ़ का क़िला आज से आपका हो गया। जिस समय आप उसमें पग रक्खेंगे, गहलौत आपका हार्दिक स्वागत करेंगे।

रायदेवा तुरन्त ही आपको किले का स्वामी बना देगा।"

बीसलदेव और दुर्गावती ने फिर गंगाराम की ओर आश्चर्य की दृष्टि से देखा। बीसलदेव ने कहा–"मैंने यद्यपि हजार पाप किये हैं मगर अब तक कोई मुझे प्रतिज्ञा भंग करने वाला नहीं कह सकता। मैंने सबसे पहले रायदेवा ही को अपनी लड़की के लिये चुना था। केवल रतनगढ़ की शर्त अवश्य थी। मेरी लड़की अब और किसी की स्त्री नहीं हो सकती।" दुर्गावती लड़की थी। लड़कियों में लज्जा स्वाभाविक ही होती है, मगर उसने देखा कि अवसर और तरह का है, लज्जा को छोड़ कर बोली–"पिता जी! मैं भी प्रण करती हूं कि इस जीवन में मैं पटहर के डाकू की अर्धांगिनी होकर रहूँगी और उसके साथ डाका मारने में शामिल रहूंगी। 'हां, अगर किसी कारण से उसने मुझे स्वीकार नहीं किया, तो मैं तमाम उम्र क्वारी ही रहूँगी। मैं हरावती के अधेड़ डाकू को दुनियां के सब युवकों से सर्वोपरि समझती हूं।" गंगाराम की आँखें प्रसन्नता के जोश में लाल होगई। अब उसने अपनी बारी पर दुर्गावती को आश्चर्य की दृष्टि से देखा। "ईश्वर करे तुम्हारे रूप के प्रकाश से रायदेवा का घर और उसके हृदय का अन्धकार रूपी कोठा

प्रकाशित हो। इस समय उसका कोई घर नहीं है, मगर इसमें संदेह नहीं है कि वह ऐसे रत्न को पाकर अपने आपको भाग्य-शाली समझेगा। अब आप कुछ खा पी लें और मेरे साथ चलें। आज की रात सब भूल में हैं। कल यह दशा न रहेगी।"

बाप बेटी दोनों ने भोजन किया। कपड़े पहिने, हथियार बांधे। और आठ राजपूतों को साथ लिया। नौकरों को वहाँ ही छोड़ा। घर से बाहर निकले। अपने घोड़ों पर सवार हुये। गंगाराम का घोड़ा भी एक जगह कसा कसाया तैयार था। वह भी सवार हुआ। इन आदमियों के गिरोह ने देहली से बाहर निकलकर जँगल की राह ली। गंङ्गाराम कई मंजिलों तक उनके साथ रहा, मगर जब उसकी वापिस आने वाली सेना रास्ते में मिली, उसने बीसलदेव से कहा—"अब पिछाई करने वालों का भय नहीं रहा। अब आराम से मेरे साथियों के साथ रतनगढ़ चले जाइये। रायदेवा आपकी बाट देख रहा होगा। उसे यह मेरा पत्र दे दीजियेगा। अगर जीवन है तो मैं कभी न कभी वहाँ आकर आपसे मिलूँगा।" गङ्गाराम ने दोनों को नमस्कार किया, बीसलदेव उससे चिपटकर मिला है और धन्यबाद देते हुये डबडवाई हुई आंखों से अपने अंतरीय कृतज्ञता प्रगट करके विदा हुआ। दुर्गावती बड़े आश्चर्य में थी यद्यपि वह गङ्गाराम की ओर आकर्षित अवश्य थी, मगर उसको यह नहीं ज्ञात हो सका कि यह गङ्गाराम स्वयं रायदेवा है और उनको झूठा पता दे रहा है।

वह समय इसी प्रकार का था और इस प्रकार के झूंठ को राजपूत झूंठ नहीं कहते थे। उस समय में इसकी आवश्यकता थी। यह बुद्धिमानों का सदैव से नियम रहा है।

बीसवां प्रकरण

गंगाराम और रायदेवा एक ही व्यक्ति था

माया के दो रूप हैं, परगट भाव अभाव।
भाव फँसावै जाल में, दुख पर धोये अभाव॥

प्रातःकाल हुआ। उमरावसिंह उठा। शौचादि से निवृत हुआ ही था कि उसका खज़ांची आया। राजा ने पूछा–"कैसे आये?" उसने कहा—कल शाम को बहुत से रुपयों के थैले छकड़ों पर लदे हुये मेरे घर पहुँचे। यहाँ आने का समय नहीं था। सरकार यदि सो न गये होंगे तो किसी आवश्यक कार्य में व्यस्त होंगे। इस कारण से मुझे उपस्थित होने का साहस नहीं हुआ। रुपये तो मैं ने रखवा लिये। इनके साथ एक पत्र भी था जो हजूर के सामने पेश करने के लिये लाया हूं।"

उमरावसिंह ने पत्र खोला, पढ़ा। लिखा हुआ था–"नोंचे और खसोटे पक्षियों को फिर बाल मिल गये और वह पिंजड़े को तोड़ कर उड़ंच हो गये। बहेलिये का दाना पानी उसके घर पहुंचा दिया गया। गंगाराम भी खुले हुये जंगलों में राम राम की रट लगाने की नीयत से चला गया। वह जहाँ के थे वहाँ पहुँचे।"

यद्यपि इबारत बहुत साफ़ थी मगर उमरावसिंह की समझ में नहीं आई। यह नहीं समझा कि नोंचे खसोटे पखेरू से तात्पर्य बीसलदेव और दुर्गावती से है। वह जानता था कि अब ये किसी प्रकार देहली छोड़ कर नहीं जा सकते। न धन पास था, न और किसी की सहायता की आशा थी। मनुष्य भी कितना संकीर्ण दृष्टि वाला है। वह समझता है कि दुनियां में मुझ जैसा

न बुद्धिमान है और न बलवान है; यद्यपि प्रकृती माता पग पग पर उसे ठोकरें दे दे कर समझाती रहती है कि केवल एक मात्र बुद्धिमान व एक मात्र शक्तिमान कोई दूसरी प्रबल शक्ति है, जो कण कण की देख भाल करती रहती है और वह एक पल के लिये भी बेसुध नहीं रहती।

मगर इतनी धन राशि का अचानक उसके ख़ज़ाँची के पास क्षण मात्र में पहुँच जाना निस्संदेह आश्चर्य की बात थी। वह समय और था। रुपया इतनी अधिकता से नहीं रहता था और इसका मूल्य भी बहुत था। वह स्नान आदि व ज़ाहिरी पूजा पाठ से निवृत होकर ख़ज़ाँची के घर गया, देखा सचमुच ढेर लगा हुआ था। अचम्भे में रह गया। उसने बीसलदेव पर जो कुछ व्यय किया था, उससे न मालूम कितना अधिक उसे मिल गया। वह स्वयं धन का पुजारी था। जिस प्रकार ईश्वर भक्त ईश्वर को पाकर प्रसन्न होता है, वैसे ही लोभी धन दौलत को पाकर प्रसन्न हो जाता है। लोभी का ईश्वर तो रुपया है। वह ख़ज़ांची को आवश्यक बातें समझा बुझाकर दरबार में गया। जी में तो आया कि सिकन्दर को इस वृतान्त की सूचना दे, मगर रुपये के लालच ने उसे रोक दिया। भय था कि कहीं यह उससे छिन न जाये। दिन ज्यों त्यों बिताया। शाम को उसने बीसलदेव का पता लेने के लिये आदमी भेजे। पता लगा कि वह ग़ायब है। अब जाकर उसकी आंख खुली और पत्र की इबारत उसकी समझ में आई। उमराव उसी समय शाही महल में पहुँचा, क्योंकि सिकन्दर का सबसे बड़ा विश्वासी प्रधान समझा जाता था। बादशाह के सामने उपस्थित हुआ। उसने पूछा "बे वक्त कसे आये ?"

उमराव ने जवाब दिया-"बुरी ख़बर सुनाने आया हूँ।"

सिकन्दर—' वह क्या है ?"

उमराव—"बीसलदेव भाग गया है।"

सिकन्दर – "यह कैसे संभव है, उसे कौन भगा ले गया ?"

उमराव—"रायदेवा।"

सिकन्दर को विश्वास नहीं हुआ। तुम हर समय रायदेवा का स्वप्न देखा करते हो। जहां कोई बात हुई रायदेवा के सर मढ़ी गई। रायदेवा कोई देव या जिन तो नहीं है, जो हर समय हर जगह पहुँच कर विचित्र खेल दिखाता फिरे। वह अभी तक राजस्थान से वापिस नहीं आया। जासूस बराबर उसका पता देते रहते हैं।

उमराव—"शाही जासूस धोके में हैं। मैंने अभी कल और परसों रायदेवा को अपनी आंखों से देखा है।"

सिकन्दर—"फिर तुमने मुझे क्यों नहीं कहा ?"

उमराव—"मैं स्वयं धोके में था। वह भेष बदले हुये था।"

सिकन्दर—"वह देहली में कब आया ?"

उमराव—"वह बहुत दिनों से देहली में था, बीसलदेव के यहां माली के रूप में नौकर था।"

सिकन्दर हँसा-"राजा साहब होश की दवा लीजिये। यह आप कहते क्या हैं ?"

उमराव—"मैं सच कहता हूँ।"

सिकन्दर—"आप स्वयं धोके में हैं। मुझे दिन दिन की खबर मिलती है। कल जासूसों ने यह पता दिया कि रायदेवा रतनगढ़ गया और आप कहते हैं कि वह बहुत दिनों से देहली में मौजूद है। मैं कैसे सच मानूं।"

उमराव—"हुजूर वह बुरी बला है। पता नहीं वह क्या है अगर मैंने उसे इन आँखों से न देखा होता तो कभी विश्वास न आता।"

सिकंदर—"क्या बीसलदेव को पता था कि रायदेवा उसका माली है।"

उमराव—'नहीं।'

सिकन्दर'—यह और भी आश्चर्य की बात है। अगर मैं विश्वास करलूं कि रायदेवा को तुमने देहली में देखा और वह बीसलदेव का नौकर भी था, अव्वल तो यह बात विचार में नहीं आती दूसरे वह उसे इतनी जल्दी भगाकर कैसे ले गया ?"

उमराव—"ऐसा मालूम होता है कि उसने कीकरी के पश्चात् रतनगढ़ के किले को भी जीता। भेष बदल कर देहली आया और बीसलदेव को वहां से ले गया।"

सिकन्दर—"फिर उसको उसकी नौकरी करने की क्या आवश्यकता थी ?"

उमराव—"यह रहस्य है जिसको मैं हल नहीं कर सकता। रायदेवा के भेष बदलने के हालात हुजूर पहले भी सुन चुके हैं।'

सिकन्दर—"केवल तुम्हारी जुबानी।"

उमराव—"चित्त में बड़ा हैरान हुआ। वह जो बात कहता है बादशाह उसे और ही तरह समझता है। अन्त में उसने विवश होकर विनय की—"जहांपनाह ! बातों में समय जा रहा है। अच्छा यह होता कि हुजूर शाही अहलकार भेज कर जांच कराते।"

सिकन्दर—"हाँ, यह एक बात तुमने कही है।"

उसी समय सिकन्दर के कर्मचारी इस कार्य पर भेजे गये। उन्होंने सूचना दी कि बीसलदेव को गये हुये दो दिन हो गये। गंगाराम उसका माली था। वह भी लापता है, परन्तु इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि वह रायदेवा था। रायदेवा के महल में पता लगाया गया। उसके आदमी कहते हैं कि अभी

तक वह राजस्थान में है। इससे अधिक किसी को ज्ञात नहीं है। हां, परसों रात उमरावसिंह के ख़ाजांची के पास अगणित रुपया गाड़ी में लद कर पहुँचा है। तहक़ीक़ात करने वाले कहते हैं कि बीसलदेव ही की सहायता के लिये आया है। अन्तिम ख़बर सुनकर सिकन्दर को आश्चर्य हुआ। उमरावसिंह को बुलाकर पूछा— "यह रुपया तुम्हारे घर किस ने भेजा ?"

उमराव ने जवाब दिया—' रायदेवा ने।"

सिकन्दर—"फिर रायदेवा का नाम लिया गया। रायदेवा को तुम डाकू कहा करते हो। डाकू धन दौलत छीनते हैं या शाही अहलकारों के घर भेजते हैं। सम्भव है रायदेवा गंगाराम न रहा हो। गंगाराम कोई और ही आदमी हो और तुम धोका खा गये हो।"

उमराव ने वह पत्र पेश किया जो ख़ज़ान्ची ने उसे दिया था। सिकन्दर ने भी उसका अर्थ नहीं समझा। तब उमराव ने कहा—' जहांपनाह ! मैंने बीसलदेव को बहुत कुछ क़र्ज़ देकर शाही सेवा के जाल में फँसाया था। वह बिलकुल बेवस हो गया था। उसे ध्यान रहता था कि यह ऋण किस प्रकार चुकाया जायगा और वह अपने आपको बेपंख का पखेरू समझने लगा था। रायदेवा ने उसका ऋण इस शकल में अदा कर दिया और उसे यहां से साफ़ भगा ले गया। मेरी कोई कूट-नीति काम नहीं आई।"

सिकन्दर के हृदय में नाना प्रकार के विचार उत्पन्न हुये। राजपूत कौम उसके लिये ऐसा भारी और पेचीदा रहस्य था, जो हल होने पर नहीं आता था। एक आदमी तो शाही नमक हलाली का दम भरता हुआ कूटनीति से अपने भाइयों को बादशाह के का कान छेरा बनाने की चिन्ता कर रहा है और दूसरा बादशाह का उत्तराधिकारी होकर राजपूतों को इस

जाल से छुटकारा दिला रहा है मगर उसने हृदय को शान्त कर लिया, क्योंकि अधिक जाँच करने से उमरावसिंह के भी हाथ से खो जाने का भय था। उसने पूछा-"यह बात क्या है कि एक ही समय में रायदेवा राजस्थान में भी रहता है और देहली में आकर मौजूद हो जाता है। वह मेरे जासूसों की आंखों में भी धूल झोंकता है।"

उमरावसिंह ने जवाब दिया-"उसके पास एक अमूल्य और चालाक घोड़ा है जिसे सचमुच हवा के समान कहना चाहिये। रायदेवा उसकी बहुत क़दर करता है।"

सिकन्दर—"तो जिस प्रकार अलिफ लैला की कहानी में अलाउद्दीन के चिराग का वर्णन आता है, वैसे ही तुम रायदेवा के घोड़े को जादू कहते हो।"

उमराव — 'बात तो ऐसी ही है।"

सिकन्दर-"अच्छा! रायदेवा को आने दो। उसे छेड़ने की आवश्यकता नहीं है। तरकीब से यह घोड़ा उससे लिया जायगा। फिर शायद वह ऐसा जादू न कर सकेगा।"

उमराव—'मगर रायदेवा यह घोड़ा कभी न देगा।"

सिकन्दर हँसा—"देखा जायगा! मैं स्वयं यह घोड़ा उससे मांग लूँगा और वह देने से मना नहीं करेगा।"

उमराव- 'मुझे विश्वास नहीं आता! हुजूर परीक्षा करलें।"

सिकन्दर-'मैं इस रायदेवा से तंग आगया। अच्छा! तुमने बीसलदेव से बमौदा का नकशा तो ले लिया होगा।

उमराव—"अफसोस! वह भी हाथ नहीं आया।"

सिकन्दर—"यह क्या कहते हो?"

उमराव—"जहाँपनाह मैं क्या कहूं। नक़शा तो तैयार होकर मेरे पास पहुँच गया था, मगर रायदेवा भेष बदलकर मेरे घर आया और उसे जलाकर नष्ट कर गया।"

सिकन्दर—"ग़ज़ब हो गया यह विचित्र निभय आदमी है मगर बमौदा का हाल तो तुम्हें ज्ञात होगया होगा।"

उमराव— 'हां उसकी दीवारें हर तरह दृढ़ बनाई गई हैं दूर दूर तक ज़मीन के अन्दर धुस पड़ी हैं, जिसके चहुँ ओर खाइयाँ हैं, और ऊँची धुस के पश्चात् किले की दीवारें हैं जो स्वयं ज़मीन में धुसी हुई हैं और धुस के बीच बीच में ज़मीन के अन्दर तहखाने बने हुये हैं जिसमें हर समय संतरी बैठे रहते हैं। फाटक से थोड़े फासले पर सुरंग है जिसका किनारा किले के अन्दर है और इसे बारूद इत्यादि से भर रक्खा गया है, ताकि जिस समय आक्रमण करने वाली सेना पहुँचे, आग लगा देने पर वहां ही झुलसकर रह जाये, और किले तक इसी तरह जगह जगह पर धुस के चहुं ओर विभिन्न और अनेक सुरंगे बनी हुई हैं। यह सब हाल मैंने बीसलदेव से सुना है। जो बमौदा रह आया है जब से रायदेवा देहली आया है उसकी लूट पाटकी दौलत ने बमौदा को बहुत दृढ़ बना दिया है। अगणित हाड़ा और मेंना सैना में भरती हो गये हैं। अब उसका जीतना कठिन कार्य है।"

सिकन्दर—"रायदेवा मेरे विरुद्ध मेरा ही हथियार काम में लाया। आश्चर्य है कि देहली की प्रजा का धन पटहर के पहाड़ी और जंगली स्थान को इस प्रकार दृढ़ बनाये परन्तु क्या कोई ऐसा उपाय तुम्हारी समझ में नहीं आता कि सांप मरे और लाठी न टूटे। मैं इस रायदेवा को फूटी आँख से देखना पसन्द नहीं करता।"

उमरावसिंह—"उपाय तो बहुत से हैं।"

सिकन्दर—'एक दो मुझे भी सुना दो।"

उमरावसिंह—' वह कूटनीति से बेहोश करके सदैव के लिये कैद कर दिया जाये। दूसरे राजपूतों की दावत में उसे

विष दे दिया जाये। तीसरे घुड़दौड़ में सिखाये हुये आदमी उस पर एक दम आक्रमण करदें कि वह जोर न कर सके।"

सिकन्दर—"इन सब में विष देना ही भला मालूम होता है। इससे भेद न खुलेगा और रायदेवा के भय से तुम छुटकारा पा जाओगे।"

इक्कीसवाँ प्रकरण

गंगाराम और रायदेवा दो थे या एक

कबीर तोड़ा मानगढ़, मारे पांच गनीम।
सीस नवाया धनी को, साधी बड़ी मुहीम॥ (कबीर)

बीसलदेव तो विदा होकर धीरे धीरे मंजिलें समाप्त करता हुआ रतनगढ़ पहुंचा। वहां रायदेवा का छोटा भाई भीम मौजूद था। बीसलदेव का नाम सुनते ही वह उससे मिला। किले की ताली उसके सुपुर्द कर दी। बीसलदेव उसके साथ आदर सत्कार से मिला मगर जब यह ज्ञात हुआ कि यह किलेदार रायदेवा नहीं बल्कि उसका छोटा भाई है, उसकी आशाओं पर पानी पड़ गया। दुर्गावती के दिल को भी दुख पहुंचा। बाप बेटी दोनों ही चिन्तित थे। उन्होंने रायदेवा को देखा, मगर वह देखना न देखने के बराबर था। फिर भी किले के हाथ आ जाने से उनको जो प्रसन्नता हुई वह वर्णन से बाहर है। रायदेवा के भाई ने किला देने के बाद देहली की ओर कूंच किया। कई दिनों में वह बड़े भाई से मिला और दोनों देहली की ओर चल दिये।

बादशाह को उसके आने की सूचना मिली। मन्त्रीगण, राजा लोग और कर्मचारी विजयी सूरमा के स्वागत के लिये भेजे

गये। सब आदर सत्कार से पेश आये और उसे दरबार में पहुँचाया। सिकन्दर इस बहादुर की बाट देख रहा था। उसने आते ही नमस्कार किया। बादशाह ने मुस्करा कर उत्तर दिया। जीतने की मुबारिकबाद दी, पुरस्कार प्रदान किया और उस दिन रायदेवा का दर्जा और बढ़ गया। सिकन्दर राजगद्दी पर सुशोभित था। उसने कहा–"रायदेवा ! तुमने पठानों को खूब हराया। पत्रकारों ने तुम्हारी वीरता की बड़ी प्रशंसायें की हैं और तुम उन प्रशंसाओं के अधिकारी हो।"

रायदेवा- -"काम तो जहाँपनाह के भाग्य ने किया। मैं क्या हूं जो काम करने का गर्व करूँ। हां, इसी बहाने से मुझे भी कुछ यश मिल गया।"

सिकन्दर–"कीकरी और उसके कुल इलाके तो राज्य में सम्मिलित हो गये किन्तु तुमको वहाँ और क्या हालात मालूम हुये ?'

रायदेवा—"राजस्थान के चारों ओर और भी सरकश पठान मौजूद हैं, जिन्होंने जगह ब जगह इलाकों पर अधिकार कर रक्खा है और राजस्थान और शाही राज्य की सीमा पर रहने के कारण से वह निर्भय हो रहे हैं। अगर बादशाह सलामत की नीयत हो तो यह सबके सब आसानी से विजय किये जा सकते हैं।"

सिकन्दर—"इन सब के विषय में फिर किसी समय तुम से सलाह ली जायगी, परन्तु कीकरी के सिवाय तुमने और भी कोई कार्य किया या नहीं।"

रायदेवा यह जानता था कि यह सवाल किया जायगा। जवाब दिया—"हाँ, जहाँपनाह ! मैंने एक साधारण निर्बल गढ़ी रतनगढ़ नामी भी विजय की.....।"

सिकन्दर–"उसे भी शाही राज्य में सम्मिलित किया होगा ?"

रायदेवा—"नहीं, जहाँपनाह ! नहीं। उसका इतिहास है।"

सिकन्दर—"वह क्या ?"

रायदेवा—"जिस समय मैं देहली आरहा था, रास्ते में एक बूढ़ा रईस बीसलदेव मिला। उसने मुझसे कहा कि पठानों ने उससे उसके बाप दादाओं की गढ़ी को छीन लिया है। सहायता करके उस पर अधिकार दिलाया जाये। मेरे जी में तो आया था कि उसी समय उस दीन की सहायता करूँ मगर देहली आने की जल्दी थी, इस कारण से कुछ न कह सका। प्रतिज्ञा अवश्य की थी कि कभी मुनासिब अवसर मिलने पर पठानों से वह गढ़ी छुड़ा ली जावेगी। अब जहाँपनाह की कृपा से वह अवसर मिल गया और मेरी प्रतिज्ञा पूरी हो गई।"

सिकन्दर—"क्या तुमने रतनगढ़ बीसलदेव को दे दिया ?"

रायदेवा-"हाँ, जहाँपनाह ! मैंने उसे अपने लिये तो विजय किया नहीं था। मुझे तो अब देहली में ही जहाँपनाह के चरणों का छाया ही काफ़ी है।"

सिकन्दर—"मगर बीसलदेव तो यहाँ चला आया था।"

रायदेवा—"यह मुझे शिवपुर जाने पर मालूम हुआ। जब मैंने रतनगढ़ को हाथ में कर लिया, अपने नौकर गंगाराम को देहली भेज दिया। उसे रास्ते के खर्च के लिये भी कुछ दे दिया था। जब वह बीसलदेव को वहां ले गया, मैं गढ़ी उसके सुपुर्द करके यहां हुजूर में हाज़िर होने के लिये चल दिया।"

सिकन्दर और उमराव दोनों को आश्चर्य हुआ। सिकंदर की समझ में आगया कि बीसलदेव को गंगाराम आकर लेगया है, मगर उमरावसिंह का संदेह दूर नहीं हुआ। वह मन ही मन में परेशान था। कभी सोचता था कि गङ्गाराम और रायदेवा एक ही व्यक्ति हैं और फिर विचार करता था कि संभव है वह दो हों मगर वह बोला नहीं। सिकन्दर चाहता

था कि और बात भी पूछूँ परंतु भय था कि रायदेवा चौकन्ना न हो जाय। यह उसको स्वीकार नहीं था। उसने रायदेवा की बहादुरी की प्रशंसा की और उसे अपने निवास स्थान पर जाने की आज्ञा प्रदान की।"

बाईसवाँ प्रकरण

रायदेवा के विरुद्ध षड़यन्त्र और षड़यन्त्र में असफलता

जाको राखे साइयाँ, मारि न सकि है कोय।
बाल न बांका कर सके, जो जग बैरी होय ॥कबीर॥

रायदेवा की वीरता की देहली में धाक बंध गई। राजपूत गलियों में इसकी वीरता के गीत गाते थे। उसने कई बार सिकंदर लोदी की राजपूती सेना की कमान हाथ में लेकर कई कठिन संग्राम विजय किये थे मगर वाहरे देशप्रेम! उसके संग्राम के जीवन में एक भी ऐसा अवसर नहीं आया कि उसने राजस्थान के छोटे मोटे रईस तक को भी तंग किया हो। सिकन्दर में चाहे और दोष रहे हों मगर स्वभाव की पहिचान में बड़ा निपुण था। रायदेवा जब कहीं भेजा गया, सदा पठानों या दूसरे मुसलमान विद्रोहियों के जीतने के लिये भेजा गया। राजपूतों के दबाने का काम उमरावसिंह के सुपुर्द था। यह उसी प्रकार का आदमी था जैसाकि उसके पीछे के समय में अकबर के मानसिंह और उसके उत्तराधिकारी हुये। कभी उसकी जीत होती थी कभी हार, परन्तु रायदेवा जहां कहीं गया सदा विजयी रहा। उमरावसिंह अपने हृदय में ईर्षा की अग्नि से जला करता था और सिकन्दर को उसके विरुद्ध भले बुरे ढंग से उकसाया करता था मगर वह बहादुर किसी के जाल में नहीं

फँसता था। अगर बादशाह के जासूस हर जगह उसकी हल-चलों की देख भाल में रहते थे तो इसके भी बफ़ादार साथी राजपूतों और मुसलमानों के डेरों में अलग अलग होकर उसको हर प्रकार के षडयन्त्र का पता दिया करते थे। उमरावसिंह ने विष देकर मारना चाहा। जीवन बाकी था, यह बच गया। घुड़ सवारी के मैदान में जब देहली के कुल प्रसिद्ध सवारों की परीक्षा ली गई, इसका तेज रफ्तार घोड़ा सबसे आगे निकल गया। घोड़ों की वापिसी पर शत्रुओं ने इरादा किया कि उस पर एक साथ आक्रमण करके उसका काम तमाम करदें। रायदेवा घात की जगह से बचता हुआ दूसरे रास्ते से आया। इसमें भी इन्हें असफलता रही। इसके साथी इसे देवता के समान पूजते थे। राजपूत रायदेवा के नाम पर जान तक देने को उद्यत रहते थे। सिकंदर और उमराव दोनों यह बात जानते थे। जब हर प्रकार षडयन्त्र में असफलता हुई, घुड़ दौड़ से वापिस आने पर सिकंदरने उससे कहा—"वाह राजपूत वाह! तेरा क्या कहना है। तेरी बराबरी का कोई भी सवार आज कठिनता से संसार में मिलेगा।"

रायदेवा ने सर झुका कर बादशाह की क़दरदानी का धन्यवाद प्रगट किया। बादशाह ने उसे सबसे अधिक क़ीमती पुरस्कार दिया। फिर सिकंदर ने कहा—"रायदेवा! क्या अगर तुम्हारा बादशाह तुमसे कोई भेंट मांगे तो तुम उसे स्वीकार न करोगे?"

रायदेवा—"क्यों नहीं, मगर जब तक यह ज्ञात न हो कि बादशाह क्या उपहार चाहते हैं, तब तक कोई जान निछावर करने वाला सेवक हां नहीं कर सकता। असम्भव वस्तु की माँग को पूरा करना असम्भव है। बहुत सी वस्तुयें ऐसी हैं जिन को देने का मनुष्य को अधिकार नहीं है। हमारी कितनी

वस्तुयें केवल ईश्वर की सम्पति हैं, कितनी भाई बन्धुओं की हैं, कितनी कौम व देश की हैं। रायदेवा आपका जान निछावर करने वाला सेवक अवश्य है और वह हर प्रकार की सेवा के लिये उद्यत रहता है। जहांपनाह ने देखा होगा कि रायदेवा को अन्य मंत्रियों की तरह चापलोसी की बातें नहीं आतीं। इसका पालन पोषण जंगलों और पहाड़ों में हुआ है। इसलिये हर मामलों में सतर्क रहने की उसे आदत पड़ गई है। यह धृष्टता नहीं है किन्तु हर एक मनुष्य के जीवन की नाप का पैमाना है। पहले आदमी सोच ले। अपनी शक्ति की परीक्षा कर ले तब किसी बात को कहे। हुजूर बतावें कि क्या आज्ञा है। तब मैं समझ बूझकर उत्तर दूँगा।"

सिकन्दर को इस प्रकार की बात चीत सुनने की आदत पड़ गई थी क्योंकि रायदेवा ने बिना समझे बूझे किसी बात का वायदा नहीं किया था। वह लड़ाई पर जाने से पहले ही सोच विचार कर लिया करता था। जब तक उसे सफलता की आशा नहीं होती थी वह केवल बादशाह के सरसरी हुक्म के मानने से विरोध कर देता था। यही कारण था कि उमराव-सिंह और दूसरे सरदारों की अपेक्षा इसे हर काम में अवश्यमेव सफलता होती थी। यह सब चापलूस थे। वह चापलूस नहीं था। इस विशेष अवसर पर भी उसे ज्ञात हो गया था कि बादशाह की क्या इच्छा है क्योंकि उसके जासूसों ने पहले ही उसे सूचित कर रक्खा था और दूरदर्शी रायदेवा ने धीरे धीरे पहले ही अपने भाई बहन और बेटे समरसी को बिना किसी के पूछे गछे रतनगढ़ की ओर भेज दिया था। देहली में इस समय इसके जान पर खेलने वाले गिने चुने साथी रह गये थे। वह भी षडयंत्र का पता पाकर ताक में लग रहा था कि कब

अवसर मिले और कब वह देहली से राजस्थान को भाग जाये। विष खिलाने और घुड़दौड़ पर आक्रमण करने के हालात से भी उसे जानकारी थी। वह जानता था कि—"बादशाह उसका घोड़ा मांगेगा।" इसी कारण से उसने जचे तुले शब्दों में उसके प्रश्न का उत्तर दिया।

सिकन्दर हंसा—"तुम्हारा बादशाह तुम से कोई ऐसी वस्तु तो नहीं माँगता जो तुम उसे न दे सको।"

रायदेवा—"सरकार को ईश्वर सलामत रक्खे। रायदेवा ने सरकार की आज्ञा से अपनी जन्मभूमि तक को सदा के लिये छोड़ा, जान बूझकर देश निकाला हो गया। अब न वह हरावती को और न हरावती उसे जीते जी देख सकेगी। देश-प्रेम और देशवासियों के प्रेम से अधिक कोई वस्तु कीमती नहीं होती। यह सब हुजूर के चरणों पर भेंट कर दिये। अब क्या बाकी रहा है जो वह अपने बादशाह को भेंट करेगा।"

सिकन्दर—"मैं तुम्हारा यह घोड़ा चाहता हूं जिसने आज तुमको सब घुड़सवारों से विजय दिलाई है।"

रायदेवा ने कुछ देर विचार किया, इसके बाद सर उठा कर कहा—"हुजूर ने बड़ी कृपा की जो स्पष्ट शब्दों में अपने विचार को प्रगट कर दिया। इसका उत्तर मैं सोच समझकर हुजूर को दूँगा क्योंकि बिना सोचे समझे मैं किसी बात का उत्तर नहीं देता।"

सिकन्दर हँसा "बहुत अच्छा; कोई जल्दी नहीं है। जब जी में आवे यह घोड़ा शाही घुड़सार में बंधवा देना और उसके बदले तुमको जितने घोड़े चाहिये वह प्रसन्नता पूर्वक दे दिये जायेंगे बल्कि सारी शाही घुड़सार अभी से तुम्हारे सुपुर्द कर दी जाती है जिनको चाहो पसंद कर लो।"

रायदेवा—"सोच समझ कर अर्ज करूँगा।"

सिकन्दर—'बहुत अच्छा।"

सिकन्दर को तो यह ख्याल था कि रायदेवा अवश्य ही अपना घोड़ा दे देगा। उसे कभी इन्कार करने की हिम्मत न होगी और रायदेवा ने दिल में ठान ली थी कि अब देहली में रहना जीवन को जोखिम में डालना है। इसने बादशाह को नमस्कार किया और विदा होकर घर आया।

तेईसवाँ प्रकरण

रायदेवा सदैव के लिये देहली से विदा

गुरु की जब कृपा भई, कट गये बंधन आप।
हर्ष शोक दोनों गले, मन में पुण्य न पाप॥

हर आदमी अपनी भूल में मारा जाता है। बादशाह से लेकर फकीर तक और स्वतंत्र से लेकर बँधुआ तक कोई मनुष्य ऐसा नहीं है जो इस जाल में न फँसा हो। हर आदमी का यह निजी अनुभव होता है। जब किसी से कोई कुकर्म बन जाता है और उसके फलस्वरूप दुख उठाता है, तब वह बार बार मन में कहने लगता है—"कि अब की बार मुझे क्षमा किया जाय फिर ऐसा काम कभी न करूँगा।" परन्तु फिर वही काम करता है। बार बार करता है और न अपने कुकर्मों को त्यागता है, न अनुभव से लाभ उठाता है। इसी का नाम माया है। माया मोहने वाली वस्तु है। मनुष्य को कौन कहे ऋषि, मुनि, देवता, किन्नर, गंधर्व सब ही को यह माया पछाड़ती और सौ सौ नांच नचाया करती है। बड़े बड़े प्रयत्नशील और नीतिज्ञ भी सदैव अपनी ही चालाकियों से मारे जाते हैं। सपेरे साँप ही के विष से मरते हैं। हिन्दी में एक

बहुत भोंड़ी कहावत है--"जिसका मंत्री कौवा स्याना उसी की हाँड़ी में गंदगी।" अधिक बुद्धिमानी और चालाकी भी सदा भूल भ्रम में बदलती रहती है।

बादशाह का मंत्री समझता है कि प्रजा की आँखों में पट्टी बांधकर जिधर हम चाहें उसकी सम्पति को मोम की तरह घुमाया करें मगर वही प्रजा उसकी आंखों में धूल डालकर उसे नष्ट भ्रष्ट कर देती है और उसकी कोई नीति काम नहीं आती। ठग और डाकू तक के यहाँ भी ठगाई और चोरी की जाती है और उसी हथियार से मारे जाते हैं।

बीसलदेव भाग गया। क्या यह अनुभव बादशाह और उमरावसिंह के सतर्क करने के लिये काफी नहीं था? मगर यह दोनों जानते थे कि रायदेवा इनके षडयंत्र से बिलकुल अनजान है। इसलिये इसकी ओर से भी भूल में थे मगर रायदेवा उड़ती चिड़िया पहचानता था। वह डाकुओं का डाकू और ठगों का ठग था। प्रशंसा तो तब है जब कोई मनुष्य ठग को भी ठग ले।

माया तू ठगिनी भई, ठगत फिरे सब देश।
जा ठग ने ठगिनी ठगी, ता ठग को आदेश॥

रायदेवा शाम के समय अपने घर पर आया। इसके भाई, बहन और बेटा सब देहली से जा चुके थे। उसने अपने साथियों से कहा—"जिस ज्वालामुखी पहाड़ से हर समय अग्नि की लपटें भड़कती रहती हों, वहां ठहरना उचित नहीं है। तुम सब भिन्न भिन्न रास्ते से एक एक करके घोड़ों पर सवार हो कर चलो। मैं मार्ग में आकर मिलूंगा और अब कभी देहली न आऊँगा। यह स्थान हमारे रहने के लिये उपयुक्त नहीं है। मैं अब बमौदा नहीं जाऊँगा और न तुम में से किसी को वहाँ जाने की हिदायत करूँगा। मेरा संकल्प बूंदानल में रहने

का है जिसके पानी से मेरे पूर्वज को लनहाड़ा रोग दूर हो गया था। उसको बमौदा से कोई सम्बन्ध नहीं है।" सब ने स्वीकार किया और उसी समय से तैयारी में लगे। कोई किसी समय किसी मार्ग से निकल गया और कोई किसी समय किसी राह से।

रायदेवा को रात भर नींद नहीं आई। हृदय में विचार रूपी नदी बड़े वेग से उमड़ कर लहरें ले रही थी। जब प्रातः काल हुआ, उसने देखा कि तमाम हाड़े चले गये हैं और केवल वही अकेला रह गया है, उसने एक नौकर को जगा कर कहा—"तुम लोग कुछ दिन यहां रहो। तुम्हारे खर्च के लिये काफी रुपया इस घर में मौजूद है। मैं यहां से जाता हूं, जी में आवे पटहर की ओर आकर मुझ से मिल लेना और जी में न आवे तो जिस प्रकार तुम्हारी इच्छा हो वैसा करना।"

यह कह कर वह घोड़े पर सवार हुआ। सूर्य्य अभी उदय नहीं हुआ था। बादशाह उठ कर बालाखाने पर बैठा था। राय-देवा यह जानता था। वह घोड़े को दौड़ाता हुआ किले की सफील के नीचे आया। बादशाह को बालाखाने पर बैठा हुआ देखा। उससे कहा—"जहाँपनाह को नमस्कार! हुजूर फिर इस बात का ध्यान रक्खें कि राजपूत से कभी भूल कर भी उसकी तलवार, घोड़ा और स्त्री न मांगें और इनकी ओर बुरी दृष्टि से न देखें। वह सब कुछ दे सकता है, मगर ये तीन वस्तुयें किसी राजपूत ने आज तक किसी को नहीं दी हैं।"

बादशाह बड़े आश्चर्य में पड़ गया। इसे यह भी ज्ञात नहीं हुआ कि कौन आदमी है और वह हथियार बन्द रांगड़ हाड़े को पहचान भी न सका। रांगड़ ने उसके उत्तर तक का इंतज़ार नहीं किया और घोड़े को एड़ लगाकर यह जा वह जा नौ दो ग्यारह हो गया। बादशाह को उस समय चेत हुआ जब वह दृष्टि

से ओझल हो गया। वह जानता था कि रायदेवा के घोड़े का पीछा शाही सवारों में से किसी से भी संभव नहीं था। इस लिये वह चुप रह गया। देर तक न किसी को इस हाल का पता दिया और न उसके हृदय में पीछा करने का विचार आया। राजपूतों को अपना मंत्री और आधीन बनाने का ख्याल जो तमाम मुसलमान बादशाहों में सबसे पहले इसी के मस्तिष्क में समाया था, क्षण भर में काफूर हो गया।

राजपूत दुनियां में सबसे अधिक नमक हलाल, सबसे अधिक सच्चे, अधिक वीर और जान पर खेलने वाले आदमी हैं। प्रकृती ने यह सब गुण उनको दूसरों की अपेक्षा बड़ी उदारता के साथ प्रदान किये हैं। संकीर्ण हृदय मनुष्य की दृष्टि ऐसे गुणों पर बहुत कम पड़ती है और वह अपनी तंग दिली से सदैव से कर्त्तव्य परायण जाति को अपना हम दर्द नहीं बना सका। उसे अफसोस हुआ और अफसोस के अतिरिक्त वह कर ही क्या सकता था।

रायदेवा देहली से इस तेजी से चला कि शायद आज कल मेल और ऐक्स प्रैस गाड़ियां भी पीछा करने से उससे दो एक मील पीछे ही रहती। वह कहीं नहीं ठहरा। नदी, नाले, पहाड़, जङ्गलों को पार करता हुआ बराबर चला गया। राह में उसके साथी मिले। उनको साथ लिये हुये उसने कुछ दिनों बाद पटहर की सीमा पर जाकर दम लिया। बमौदा जाने की शपथ थी। जब वह बूंदा नल पर पहुँचा साथियों से कहा–"राजपूतो! हमारी यात्रा यहाँ आकर पूरी हो गई। आज से बूंदानल बूंदी कहा जायगा। यही रायदेवा और रायदेवा की संतान की राजधानी होगी और इससे हाड़ा वंश की एक वीर जाति उत्पन्न होगी, जो साहस और बहादुरी में मेवाड़ के गहलौतों को भी आश्चर्य में डालेगी। यहां हाड़ों का क़िला बनेगा। मंदिर मीनार

बड़ी बड़ी सुन्दर हवेलियां इसकी शान को बढ़ायेंगी और कोई शत्रु भी एक वीर हाड़ा के जीते जागते इस पर आक्रमण करने का साहस न कर सकेगा।"

यह पहले शब्द थे जो रायदेवा के मुख से उस समय और उसी जगह कहे गये थे। जिन्होंने बूंदी का इतिहास पढ़ा है, वह जानते हैं कि रायदेवा की भविष्यवाणी अक्षरसः सच्ची सिद्ध हुई। हाड़ा वंश के राजपूतों को बूंदी पर जितना गर्व था और जिस प्रकार पर वह उसके नाम पर बलिदान होने का खेल दिखा चुके हैं, राजस्थान पर ही क्या विशेषता है दुनियां की किसी वीर और साहसी देश भक्त जाति ने उसका उदाहरण स्थापित नहीं किया।

रायदेवा ने यहां आकर निवास किया। जब हरराज उसके बेटे ने सुना कि रायदेवा देहली से वापिस आ गया है और बूंदानल पर मौजूद है, उसने एक आदमी उसके पास भेजा, जिसने आकर यह संदेशा सुनाया—'बमौदा अपने बहादुर सरदार के आदर सत्कार और सेवा के लिये उद्यत है।' रायदेवा हँसा—"राजपूत तू क्या कहता है? हरराज से जाकर कहदे कि तेरा पिता रायदेवा अब दुनियाँ में नहीं है। उसके जीवन का अन्त उसी दिन हो गया, जब वह बमौदा की सीमा से बाहर निकाला था। जन्म भूमि से निकाले हुये राजपूत फिर अपनी जन्म भूमि को वापिस नहीं जाते। रायदेवा को सदैव के लिये मरा हुआ मानले। उसकी आत्मा निस्संदेह इधर उधर उस समय तक भटकती रहेगी, जब तक हाड़ा जाति के नव युवकों को अपने पैरों पर खड़े हुये और अपने भुजबल से राजपूती शक्ति और राजपूती गौरव का खेल दिखाते हुये न देख लेगी। रायदेवा से बमौदा चलने के लिये कहना उसको

अपमान का अपराधी बनाना है। तू जा! रायदेवा के बेटे और रायबंगो के पोते को यह संदेशा सुनादे। फिर वह इस प्रकार की बातें न करे। समझले कि रायदेवा मर गया। उसके क्रिया कर्म का ध्यान रक्खे। बमौदा में उसका बड़ा लड़का हरराज राज्य का उत्तराधिकारी है।" उस संदेशा लाने वाले को फिर यह साहस नहीं हुआ कि वह कुछ कहे। वह चुपके उलटे पाँव वापिस चला गया और जब हरराज ने बाप का संदेसा सुना, आज्ञाकारी पुत्र ने राजपूती चलन व प्रथा के अनुसार उसी समय रायदेवा का पुतला बनाया। बारह दिन तक उसका रंज किया। तेरहवें दिन उसका दग्ध संस्कार किया। आप स्वयं सिंहासन पर बैठा। उस समय से बमौदा उसको अपना राजा और स्वामी स्वीकार करने लगा। राजस्थान में उत्तराधिकारी को युवराज कहते हैं। बापके साथ उसके जीवन में ही राज्य के कार्यों में सम्मिलित रहना युवराज का कर्तव्य है। जब बाप मर जाता है अथवा किसी कारण से वह राज्य को छोड़ जाता है, तब उसका लड़का उत्तराधिकारी होता है। इस प्रकार के चार उदाहरण हरावती के पुराने इतिहास में आये हैं। पहला उदाहरण रायदेवा ने, दूसरा नरायनदास ने, तीसरा चित्रसाल ने, और चौथा श्री उमेदसिंह जी ने स्थापित किया था। इस प्रकार के देश निकाले के बाद फिर राजा न तो राजा कहलाता है और न उससे कोई प्रजा कहता है। राजा कभी प्रजा नहीं हो सकता। राजा के पद से गिर कर प्रजा कहलाना लज्जा की बात है और रायदेवा जैसा बहादुर कब इस अपमान को सहन कर सकता था।

जब उसने सुना कि बमौदा में उसके बेटे ने उसका मृतक संस्कर कर दिया, वह प्रसन्न हुआ। उसे मन से आशीर्वाद दिये। सच्चे पुत्र का सच्चा धर्म यही है कि वह अपने पिता के

क्रिया कर्म को धर्मानुसार करे। ईश्वर उसे उच्च पद और सफलता प्रदान करे।"

जिनको हिन्दुओं के धार्मिक रीति रिवाज से जानकारी नहीं है वह इस रीति को गँवार और आदि काल की जंगली कौमों की प्रथा कहेंगे, मगर इससे बहुत बड़ी शिक्षा मिलती है। वह यह है कि शाशक राजपूत के साथ सम्बन्धों की जड़ सदैव के लिये कट जाती है और फिर वह उनके प्रेम के जाल में नहीं फँसता और न राज्याधिकार और हुकूमत के लालच में आता है।

रायदेवा ने समरसी को रतनगढ़ से बुलाकर कहा—"बेटे आज से तू मेरा युवराज है। अब मैं द्विजन्मा हूँ। मेरे पश्चात तू इस ऊजड़ बूंदी का राजा होगा। देख अपने भाई के साथ कभी लड़ाई छेड़ने का इरादा न करना और न उसके राज्य में झगड़ा डालना। वह बमौदा का सरदार रहेगा और तू बन्दी का राजा माना जायगा। यह पद समय पर तेरा द्विजन्मा पिता प्रदान करेगा।"

चौबीसवाँ प्रकरण

दुर्गावती और प्रेमविदा

वह दिन कैसा हो गया, गुरु गहेंगे हाथ।
अपना कर बैठा वहीं, चरण कमल के माथ॥
(कबीर साहब)

समरसी, प्रेम विदा और रायदेवा के दूसरे साथी संबधी देहली से चलकर पहले रतनगढ़ के किले में आकर रहने लगे थे क्योंकि रायदेवा के लिये राजस्थान में कोई जगह नहीं थी जिसे

वह अपनी कहता। जब रायदेवा बूंदानल में आया, उसने कुछ दिनों के बाद ही समरसी, अपने छोटे भाई और दूसरे राजपूतों को वहां बुलाया, मगर प्रेमविदा अपनी छोटी बहन को रतनगढ़ में ही रहने दिया। उसकी इच्छा थी कि बूंदी बस जाय तो फिर प्रेम बिदा को बुलाकर किसी राजपूत के साथ उसकी शादी करदी जाये, क्योंकि वह भी अब बालिग होगई थी।

प्रेमविदा और दुर्गावती में थोड़े ही दिनों के रहने सहने के अन्दर परस्पर प्रेम होगया था। वह जानती थी कि दुर्गावती उसके भाई के लिये नियत हो चुकी है। इस वजह से वह अधिकतर उसे छेड़ती रहती थी। यह लड़कियों का स्वभाव है और दुर्गावती उसकी छेड़ छाड़ से केवल प्रसन्न ही नहीं होती थी बल्कि इच्छुक रहती थी कि प्रेमविदा उसे इस प्रकार छेड़ती रहे। एक दिन वह बैठी हुई इस प्रकार बातें करने लगीं।

प्रेम विदा–'तुम्हारी मेरे भाई के साथ मंगनी है अतः तुम मेरी भावज हो।"

दुर्गावती हँसी—"फिर क्या हुआ! तुम मेरी नन्द हो।"

प्रेमविदा—"क्या तुमने मेरे भाई को देखा है?"

दुर्गावती— "कभी नहीं॥"

प्रेमविदा—फिर यह तुम्हारी गलती है। वह स्त्रियों की ओर बड़ी कठिनता से आकर्षित होता है। मैं अपने भाई को खूब जानती हूँ। वह जंगली स्वभाव का है। उसे स्त्रियों का कुछ भी पास नहीं है।"

दुर्गावती—"तुमको क्या पता है?"

प्रेमविदा—"क्या मैं स्त्री नहीं हूं?"

दुर्गावती—"मैं तुमको स्त्री नहीं समझती।"

प्रेमविदा –"फिर मैं कौन हूं?"

दुर्गावती—"तुम स्त्री के रूप में मर्दाना स्वभाव रखती हो।"

प्रेमविदा—"यह तुमने सच कहा है। मेरे बाप की संतान इसी प्रकार की है।"

दुर्गावती—"मेरा भी यही हाल है। यद्यपि मैं स्त्री हूं मगर घुड़ सवारी तीर और तलवार चलाने में शायद तुम्हारे भाई से कम नहीं हूं।"

प्रेमविदा—'ऐसा न कहो। मेरा भाई सूरमा है, वीर है। आज संसार में वैसा साहसी कोई भी पुरुष नहीं है।"

दुर्गावती—"मैं भी ऐसी ही हूं। पिताजी मुझे व्यर्थ देहली ले गये। मेरी इच्छा थी कि मैं स्वयं शत्रुओं से लड़कर रतनगढ़ को वापिस ले लूँ मगर अवसर नहीं मिला।"

प्रेमविदा—"यह काम तुम्हारे पति ने कर दिया।"

दुर्गावती—"यही कारण है कि मैं उनकी उदारता को स्वीकार करती हूँ।"

प्रेमविदा—"भावज! तुम हृदय में मन के लड्डू पकाती हो। न अब तक तुमने मेरे भाई को देखा है और न उसके मन का हाल मालूम हुआ है। ख्याली तौर पर उसकी स्त्री बन बैठी हो।"

दुर्गावती—"मैं इसमें कोई दोष नहीं देखती। पिता जी ने ऐसा ही प्रण कर लिया है और मैंने भी दिल में ठान ली है कि या तो तुम्हारी भावज हूंगी या जीवन पर्य्यन्त कारी रहूँगी।"

प्रेमविदा–"फिर मुझे नन्द क्यों कहती हो?"

दुर्गावती–"इस कारण से कि मैं तुम्हारे भाई की हो चुकी हूँ।"

प्रेमविदा—"मगर तुम अभी नई नवेली हो। मेरा भाई अधेड़ है। उसकी उम्र बहुत अधिक है। तुम उसे पसंद कैसे करोगी।"

दुर्गावती—मुझे अधेड़ ही पति का प्रेम है? क्या तुमने

नहीं सुना है कि अधिक उम्र वाले पति अपनी युवा स्त्री को अधिक प्यार करते हैं और हर समय गले का हार बनाये रखते हैं। युवा पति अधिकतर बेपरवाह होते हैं। इसलिये मैं अपने आपको भाग्यशाली समझती हूँ।"

प्रेमविदा—"अच्छा! मान न मान मैं तेरा महमान। यह बात तो तुम उस समय कह सकती थीं जब मेरे भाई ने तुम्हें स्वीकार कर लिया होता। मुझे संदेह है, संभव है कि रायदेवा तुमको पसन्द न करें।"

दुर्गावती—"यह क्यों? क्या मुझ में स्त्रियों के गुण नहीं हैं?"

प्रेमविदा—"मैं क्यों कहूं कि तुम ऐसी नहीं हो। तुम अत्यन्त सुन्दर हो परन्तु जिस पुरुष का घर घोड़े की पीठ की जीन पर हो, जिसका साथी तलवार हो और जो जंगली शेर और चीतों के बीच रहता हो, वह कैसे संभव है कि किसी स्त्री का हो कर रहे।"

दुर्गावती—"उनकी पहली शादी भी तो हो चुकी थी। जिस पुरुष का सम्बन्ध एक बार किसी स्त्री से हो चुका हो वह दूसरी बार भी दूसरी स्त्री को प्यार करेगा और मैं समझती हूँ कि तुम्हारा भाई मुझे लूट का माल समझेगा।"

प्रेमविदा—"क्यों?"

दुर्गावती—"क्योंकि मुझ में उनके ही जैसे भाव हैं।"

प्रेमविदा—"क्या तुम मेरे भाई की शकल देखना चाहती हो?"

दुर्गावती—"अवश्य, और मैं तुम्हारा अहसान भी बहुत मानूँगी।"

प्रेमविदा—"देखो भावाजें अधिकतर अपनी नन्दों का बुरा चाहने वाली होती हैं। तुम प्रतिज्ञा करो कि मेरे साथ कभी झगड़ा न करोगी! तब मैं दिखा दूंगी।"

दुर्गावती–"क्या मैं कभी तुम से लड़ती हूँ। लड़ना भिड़ना गँवार स्त्रियों का काम है।"

प्रेमविदा अपने कमरे में गई। सन्दूक खोला। दो चित्र उठा लाई। दुर्गावती के हाथ में रख दिये। यह तैल चित्र थे। इस समय अक्सी चित्रों का नाम तक किसी ने नहीं सुना था; चित्र बनाने वाले हाथों से कपड़ों, काग़ज़ या हाथी दांत के टुकड़ों पर चित्र खींचो थे। देहली में इनका बहुत चलन था।"

दुर्गावती ने एक चित्र को देखा। उसमें डाढ़ी थी। बोली—"मक्कार धोखेबाज़ ने शिवपुर में कहा था कि वह पटहर के सरदार का भाई है, यद्यपि वह स्वयं ही था।" दूसरे चित्र में डाढ़ी नहीं थी। उसे देख कर बोली—"देहली में वह गंगाराम माली बन कर आया था।"

प्रेमविदा—"तुम क्या मन ही मन में बड़बड़ा रही हो?"

दुर्गावती—"तुम्हारा भाई बड़ा मक्कार और झूँठा है। उसने हर अवसर पर अपना नाम छिपाया। पहली बार उसने अपने आपको अपना भाई प्रगट किया और दूसरी बार गंगाराम माली बन कर मेरे बाग़ में काम करता रहा। मिलेगा तो मैं उसकी अच्छी तरह खबर लूंगी। मैंने इस चित्र के असल को देखा है।"

प्रेमविदा—"भावी! मेरा भाई न मक्कार है न झूठा है न धोखेबाज़ है। यह समय बहुत भयानक है। शत्रु उसकी ताक में लगे रहते हैं. अगर वह किसी मसलहत से अपने आपको छिपाता रहता है तो इसमें बुराई क्या है?"

दुर्गावती–"बुराई तो मैं नहीं कहती मगर उसने एक बार भी अपने आपको मुझे प्रगट नहीं किया।"

प्रेमविदा—"तुम कहती हो कि वह तुम्हारे बाग़ में माली के रूप में काम करता था।"

दुर्गावती-"हाँ यह सच है और इसी माली ने मेरे बाप का ऋण चुकाया। हम दोनों को देहली के बंधन से छुड़ाया और पिताजी से कहा कि पटहर का सरदार रतनगढ़ के किले में है, यद्यपि यहां आने पर उसका भाई निकला।"

प्रेमविदा—"इन्हीं चतुरताओं के कारण वह शत्रुओं के जाल में नहीं फँसता अन्यथा देहली में सहस्रों ही उसके प्राणों के भूखे थे। तुम्हारे यहां माली की शकल में जाना सिद्ध करता है कि वह तुमको चाहता है वर्ना वह कभी वहां न जाता।"

दुर्गावती—यह सुन कर प्रसन्न हुई। गङ्गाराम की एक एक बात उसको याद आ गई। प्रेमविदा से कहा अगर यह बात होती तो देहली से वापिस आने पर वह अवश्य मेरे पिता से मिलता और अपनी धरोहर का इच्छुक होता।"

प्रेमविदा—"नहीं भाबी! यहाँ तुम गलती पर हो। वह किसी और चिन्ता में होगा। मैंने तुमसे पहले ही कह दिया है कि उसका कहीं घर द्वार नहीं है और न अब वह बमौदा में जायगा। वह तुम्हारे रहने के लिये मकान बनाता होगा या और किसी राज की नींव डालने की चिन्ता में होगा। जब उधर से उसे छुटकारा मिलेगा तो अवश्य यहाँ आयेगा। वह राजा होगा और तुम रानी बनोगी।"

दुर्गावती-उसने कई बार मुझे गंगाराम के भेष में महारानी कहा था। मैंने मना किया था, बाई कहने का आदेश दिया। कौन जाने वह इसी विचार से मुझे महारानी कहते रहे हों।"

प्रेमविदा—"यही बात है और कुछ नहीं।"

दुर्गावती—"देहली से वापिस आये इन्हें बहुत देर हुई। अब तक उन्होंने आकर मेरी खबर नहीं ली। वह कठोर हृदय भी हैं। अगर कुछ भी मेरा ध्यान होता तो यह उदासीनता कभी न होती। "दुर्गावती आखिर स्त्री थी। उसकी आँखें आंतम शब्द

कहते समय डबडबा आईं। प्रेमविदा ने देख लिया। बोली—"चिन्ता न करो मैं स्वयं भाई के पास आदमी भेजने वाली हूं। मैं यहां अधिक दिनों तक रहना नहीं चाहती। जब मैं वहां जाऊँगी तुम्हारा हाल कहूंगी।"

दुर्गावती—"मुझ में इतने संतोष और प्रतीक्षा की शक्ति नहीं है। क्यों न मैं इस जंगली रांगड़ की खोज में स्वयं बाहर निकल कर उसे खोज निकालूं।

प्रेमविदा—"ऐसा न करना। देखो मुझे जाने दो। मैं स्वयं प्रबन्ध करूँगी।"

दुर्गावती—"नन्द जी! तुम मेरा प्रबन्ध नहीं कर सकती हो, मैं तुम्हारी सहायता के आसरे नहीं हूँ। हाँ, मैं अपने पति से मिल कर तुम्हारा प्रबन्ध सोचूँगी। अब तुम्हारी उम्र ऐसी नहीं है कि अधिक दिनों तक इस हालत में रहो।"

प्रेमविदा मुसकराई—"आगईं लड़ने झगड़ने पर। इसी लिये तो मैंने पहले ही तुमसे प्रण करा लिया था।"

दुर्गावती ने नन्द के हाथ पकड़ लिये। उसका मुख पकड़ कर चूंमा दिया। "बीबी! विश्वास रक्खो। दुर्गावती लड़ने झगड़ने वाली स्त्री नहीं है। तुमने आज मेरे पति की शकल मुझे दिखाई है और मेरा भी कर्तव्य है कि मैं भी तुम्हारे लिये वर उत्पन्न करूँ और उसकी शकल तुम्हें दिखादूँ।" नन्द और भावज में उस दिन देर तक इसी प्रकार की नोंक झोंक होती रही।

पच्चीसवाँ प्रकरण

दुर्गावती और उसका बाप

मन गुण अवगुण दोउ बसें, मन का क्या विश्वास।
कबहूँ मन राजा बने, कबहूँ सेवक दास॥

रतनगढ़ मिल गया। बीसलदेव को प्रसन्न होना चाहिये था मगर वह प्रसन्न नहीं था, दुर्गावती को एक प्रकार की स्वतंत्रता प्राप्त हुई मगर वह प्रसन्न नहीं थी। प्रेमविदा देहली से घर की ओर आने की इच्छुक थी। यद्यपि वह बमौदा में नहीं पहुँची मगर राजस्थान में तो आ गई थी फिर यहां भी वह प्रसन्न नहीं थी।

बात क्या है? क्या मनुष्य की इच्छा पूर्ण होने पर उसे प्रसन्नता नहीं मिलती? इच्छा की सफलता ही का नाम तो प्रसन्नता है। जब तक हमको किसी वस्तु की खोज रहती है तब तक उसकी प्रतीक्षा और प्रयत्न में लगे रहते हैं। उसके प्राप्त होने पर प्रसन्नता तो मिलती है मगर वह प्रसन्नता अधिक नहीं ठहरती। दुनियां के सब प्रकार के स्वाद, उद्देश्य और संलग्नता की यही दशा है। यहाँ तुम हर प्रकार से संतुष्ट किसे देखते हो। मैं कहूंगा—"एक को भी नहीं।" दुनियां में सच्चे संतोष और शान्ति का नाम कहां है। यह वस्तु तो किसी दूसरे ही वर्ग में पाई जाती है।

मगर इस अवसर पर इन तीनों की अप्रसन्नता का कारण कोई दूसरा ही था, जिसका किसी को पूर्ण रूपेण पता नहीं था। बीसलदेव को संभव है कुछ ख़बर रही हो, मगर असल भेद को वह भी नहीं जानता था; क्योंकि वह नेक हृदय और तीव्र बुद्धि का आदमी नहीं था। दुर्गावती की बुद्धि तीक्ष्ण थी, मगर उसे न भेद का पता था न प्रकृति के नियमों की ज्ञाता थी, और प्रेमविदा तो केवल साधारण लड़की थी।

हम देखते हैं कि प्रत्यक्ष में कोई घबराहट की बात नहीं है मगर हम दुखी हो जाते हैं। अंदर ही अंदर मन में कुरेद या अशांति रहती है और सांसारिक सुख चैन के सामान हमको संतोष और विश्वास नहीं दे सकते। इसका कारण बहुत थोड़े

मनुष्य जानते हैं। कारण यह है दुनियाँ, हालात, ख्यालात और घटनाओं के उलट पुलट और बनने व बिगड़ने का स्थान है। कहीं किसी जगह हम जैसे मन बुद्धि रखने वाले मनुष्य को दुख हुआ, उनके हृदय से विशेष प्रकार की चिन्ता उत्पन्न करने वाले ख्यालों की धार पवन के हल्के झोंके की तरह चालू हो गई। चूंकि हम इन्हीं मनुष्यों के समान ही भाव और प्रभाव रखते हैं, वह अनजाने हमारे मन और बुद्धि से टकराने लगते हैं और हम प्रभावित हो जाते हैं। यह भेद है। यह नियम है। यही प्रकृति का नियम है। यदि विचारधारा में प्रसन्नता है तो हमको प्रसन्नता मिलती है और अगर इसमें रंज है, तो हमको रंज होगा। समस्त संसार के सहानुभूति के हृदय वालों में लगभग समानता होती है। किसी एक दिल से कोई ख्याल निकला नहीं कि दूसरों के दिल से टकराया नहीं। बिना तार की खबर पहुँचाने का नियम आज कल के सभ्यता युग में प्रभावित होता हुआ दिखाई दे रहा है। वही मुख से कहे बिना विशेष विचार को हमदर्द दिलों तक पहुँचाता रहता है और जिसको जिसके साथ जिस अंश तक सहानुभूति, समानता और अनुकूलता है उसी सीमा तक उसकी ओर खिंच कर उसके प्रभाव में आता है।

दुर्गावती बेचैन थी। बीसलदेव अशाँत था। प्रेमविदा फिकर में थी। बेटी बाप के पास आई। 'पिताजी! प्रेमविदा घबराती है। बमौदा से खबर नहीं आई। भाइयों का कई महीनों से हाल मालूम नहीं हुआ। समरमी भी अपने पिता के पास चला गया। यह उसकी घबराहट का कारण है।"

बीसलदेव—"तो वह ठीक है।"

दुर्गावती—"बमौदा की खबर आंखर क्यों नहीं आती?"

बीसलदेव—"बेटी ! पता तो मुझे हर बातका है। मगर मैं क्या कहूं। मुझे स्वयं दुख है।"

दुर्गावती—"ऐसा क्यों है? अब रतनगढ़ तो आपके हाथ में आगया।"

बीसलदेव—"हां, यह सही है, लेकिन जब से मैं देहली से आया हूं, रायदेवा का कोई आदमी मेरे पास नहीं आया और न उसने मुझे कुछ कहला भेजा। इसका मुझे दुख है।"

दुर्गावती—"क्या यह भ्रम नहीं है?"

बीसलदेव—"कौन जाने यह क्या है? मैं कुछ कह नहीं सकता। मुझे ख्याल था कि रायदेवा देहली से आते ही मुझसे तेरी दरख्वास्त करेगा। तू उसकी धरोहर है। इसका उसे पता है मगर वह चुप है। पता नहीं वह क्या सोच रहा है। कई दिन से मन में आरहा है कि कोई आदमी भेजूँ जो रायदेवा को जाकर कहे कि अपनी धरोहर आकर लेजा।"

दुर्गावती बोली—पिताजी आपको भ्रम है। जो आदमी क्वारी बहिन को आपकी देखरेख में देकर चुपकी साध लेता है, वह इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण दे रहा है कि उसका आप पर बहुत विश्वास है। बहू बेटी और बहन को कभी कोई माननीय राजपूत इस प्रकार किसी दूसरे के यहां नहीं रखता। आपने देखा कि उसने सबको बुला लिया, मगर प्रेमविदा और उसकी सहेलियां अब तक आपके पास हैं। अगर यह विश्वास और भरोसा नहीं है तो क्या है।" बीसलदेव ने लड़की को ध्यान देकर देखा। सच्ची बात थी। हृदय में स्थान कर गई। बोला—"तू सच कहती है। मैंने इस पर कभी ध्यान नहीं दिया। यद्यपि रायदेवा के समाचार कभी कभी मुझे मिलते रहते हैं जिन से तू जानकार नहीं है, मगर मैं इस नतीजे पर नहीं

पहुंची जिस पर तू पहुंची है। तूने इस समय मेरी चिंता को दूर कर दिया। तू बहुत समझदार लड़की है।"

दुर्गावती-"आपको क्या समाचार मिले हैं। सम्भव है इनके सुनने से प्रेमविदा के हृदय को शान्ति मिले।"

बीसलदेव-"यह बहुत बड़ी कहानी है, मगर मैं तुझे सुनाये देता हूं। जिस प्रकार से रायदेवा ने हम लोगों को देहली से भगाया, वैसे ही वह स्वयं भी बिना बादशाह की आज्ञा के देहली से भाग आया। बादशाह ने उसकी उद्दंडता और स्वच्छन्दता पर कोई आपत्ति नहीं की, किन्तु उसके आदमी बाद को आये और रायदेवा को समझा बुझाकर बमौदा के पास कुछ जागीरें दे गये और उसको बादशाह के वफ़ादार रहने का आदेश कर गये। बादशाह अवसर वादी शासक है। उसने रायदेवा के साथ उसकी अच्छी सेवाओं के विचार से यह बर्ताव नहीं किया, किन्तु अपनी कूटनीति से अपना आदमी बनाना और चुपका रखना चाहता है। इधर चूँकि रायदेवा को बमौदा के अन्दर पैर रखने की शपथ थी, उसने बूँदानल को बसा करके बूँदी नाम रक्खा। महल मकानात, मन्दिर, कुआं बनाये। उसके पास के तमाम इलाकों को उसमें शामिल कर लिया और बूंदी अपनी राजधानी बना ली।"

दुर्गावती का हृदय इतना हाल सुनकर प्रसन्नता से उछलने लगा। "गंङ्गाराम मुझे महारानी कहा करता था, क्या मैं सचमुच महारानी हूँगी।" मनुष्य स्वाभाविक रूप से मनचला और मान चाहने वाला होता है। ऐसा कौन आदमी है जिसे स्वाधीनता, मान और संपदा की चाहना नहीं है।

बीसलदेव ने फिर अपनी बातचीत के सिलसिले को शुरू किया। "रायदेवा ने बमौदा को तो पहले ही से हर राज को दे रक्खा है। वह चाहता है कि राजस्थान के रेगिस्तान में मेवाड़

के समान एक राज्य स्थापित करे और उसी धुन में रात दिन रहा करता है।"

दुर्गावती—"सम्भव है इसी धुन में लगे रहने से उनको आपकी ओर ध्यान करने का अवसर नहीं मिला।"

बीसलदेव—यह सच है तो भी उसने किसी आदमी को तो मेरे पास भेज देना था। इसमें हानि क्या थी।"

दुर्गावती—"संयोग की बात है। संभव है छुटकारा मिलने पर उनको आपका ख्याल आये।"

बीसलदेव—"रायदेवा जानते हैं कि मैं अब कुछ दिनों का मेहमान हूँ। वह आकर तुझे ले जाते। इस धरोहर को आखिर कब तक अपने पास रक्खूँगा। मेरे बाद रतनगढ़ का कोई उत्तराधिकारी नहीं है। मेरा कुछ और विचार था। हृदय में लालसा है कि अगर ईश्वर तुझे कोई लड़का देदे तो वही उसका मालिक हो।"

दुर्गावती फिर शरमाई—"बूढ़े बाप को क्या कहती। स्वयं चुप होगई। बीसलदेव की आंखें इस विचार के दिल में आते ही डबडबा गईं। दुर्गावती ने कहा—"पिताजी! क्या और भी कोई समाचार है जिसको सुनकर प्रेमविदा प्रसन्न होगी।"

बीसलदेव—"मैं तेरी बातों में आकर भूल गया था। असली आश्चर्य जनक और दुःखदाई घटना तो अभी सुनाने को है। वह प्रेमविदा के संबंध में है।"

दुर्गावती के कान खड़े हुये "पिताजी! यह क्या बात है?"

बीसलदेव—"सुनो बेटी! जिस समय रायदेवा देहली से वापिस आये, मेंना जाति के कुल स्वतंत्रता प्रिय नव युवक उसकी सरदारी देखकर उनके झंडे के नीचे आये और सर दे देकर उनकी और राज्य की उन्नति करने में सरतोड़ प्रयत्न करते रहे। अगर मेंना जाति के वीर इतनी अधिकता से शामिल न हुये होते तो

संभव नहीं था कि जो सफलता रायदेवा ने इस समय प्राप्त करली है, वह मिलती।"

दुर्गावती—"पिताजी! भाग्य ही असली वस्तु है। अगर भाग्य अच्छा है, तो सहस्रों मनुष्य सहायक हो जाते हैं और अगर भाग्य अच्छा नहीं तो फिर कुछ नहीं होता।"

वीसलदेव—"यह सब सच सही, मगर मेरी दृष्टि तो राय देवा की बुद्धिमता रहित कार्यों की ओर है।"

दुर्गावती रायदेवा के विरुद्ध अपने बाप के मुख से भी कोई बेजा शब्द नहीं सुनना चाहती थी। यह भी मानव स्वभाव में शामिल है। इन्सान जिसका मान करता है या जिसमें अधिक प्रेम है उसके प्रतिकूल एक बात भी सुनना नहीं चाहता। उसने मनको रोककर पूछा कि यह बुद्धिहीनता का काम क्या था।

वीसलदेव—"उनकी सेना में मन्जू नाम का मेंना एक सरदार का लड़का था। चूँकि उसने लड़ाइयों में अपूर्व काम किये थे, वह चाहता था कि रायदेवा उसके पारितोषिक में अपनी बहिन उसे देदें। रायदेवा ने उसे सुना। क्रोध में आगये। उसको बुलाकर भला बुरा कहा, अपना अपमान और निरादर समझा। किसी मेंना का पटहर के सरदार की लड़की की मांग करना उनकी राय में हाड़ों का अपमान है। यह उनकी ग़लती है। मन्जू अप्रसन्न हो गया। सेना को छोड़कर चला गया। दूसरे युवक मेंना भी उसके साथी होगये। उन्हें भी रायदेवा की यह चाल बुरी लगी। आखिर को वह भी क्षत्री थे। बूंदा-नल के चारों ओर तमाम गाँवों में मेंना ही बसे थे। सबके मन पटहर सरदार की ओर से उलट गये। विद्रोह बढ़ गया और उन सबने मिल मिला कर जेठ नामी एक मालदार को अपना सरदार चुना और घोषणा कर दी कि कोई आदमी

हाड़ों की आधीनता न करे। जब रायदेवा ने यह दशा देखी उसके होश जाते रहे। घर की फूट बुरी होती है। चाहिये तो यह था कि वह उनको बुलाकर समझाते और नीति से काम लेते मगर यह न हो सका। वह अवसर को देखने वाले अवश्य हैं। शीघ्रता से बमौदा के हरराज और सोलंकी राजपूतों से सहायता ली। मेंनाओं पर आक्रमण कर दिया। लड़ाई हुई। अगणित मेंना मारे गये। मंजू भी काम आया, रेगिस्तान की पृथ्वी रक्त से लाल हो गई। मेंना के साथ लड़ने में रायदेवा ने स्वयं अपना और अपनी कौम का नुकसान किया, जो उनके और उनके बाप रायबंगो के नियम के विरुद्ध था। मेंना हार गये मगर इस हार मानने पर भी रायदेवा की आधीनता में नहीं आये। हरावती को छोड़ गये। मेवाड़ की सीमा में इधर उधर जाकर बस गये और अब जेठ उनका सरदार बना है।"

दुर्गावती-"मगर यह क्षत्री के लिये साधारण सी बात है।"

बीसलदेव—"लड़की! तू क्या कहती है। अभीतक तूने इस भयानक कहानी का अन्तिम परिणाम नहीं सुना।"

दुर्गावती - "वह क्या है?"

बीसलदेव— 'रायदेवा को इस अपमान करने का फल यह हुआ कि अगणित मेंना हिन्दू धर्म को त्यागकर मुसलमान भी हो गये। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में रायदेवा को कहला भेजा है कि जो कौम अपनी कौम का मान नहीं करती, जिसमें जाति प्रेम नहीं है और जो अपनी ही जाति में अप्रसन्नता से छुटाई बड़ाई की कांट छांट पैदा करके अपने ही आदमियों की दुर्दशा किया करती है, वह कब इस योग्य है कि समझदार आदमी उसके साथी होकर रहना चाहे।"

रायदेवा ने उसकी इस धमकी की कुछ भी परवाह नहीं की। वह राजपूतों के बिगड़े हुये बड़प्पन को वापिस लाने के दावे

दार बन करके आये थे और बचे खुचे बड़प्पन को धक्का दे बैठे। यह उनकी बुद्धि हीनता के काम का फल हुआ।"

दुर्गावती—' मुझे भी इसके सुनने से दुख हुआ। क्या अब यह काम हाथ में नहीं आ सकता ?"

बीसलदेव-"नहीं, मेंनाओं की अधिकतर संख्या हमारे घेरे से बाहर चली गई जिससे जाति को बड़ा धक्का पहुँचा है।"

दुर्गावती—"तो क्या प्रेमविदा का ब्याह न होगा।"

बीसलदेव हँसा—"कहीं कोई कन्या भी बिना ब्याह के रही है। बर का ब्याह हो या न हो लड़की तो हमेशा ही ब्याही जाती है। किसी न किसी समय कोई न कोई आदमी उसके हाथ का अधिकारी होकर आ जाता है। सदा से ऐसी ही प्रथा है। प्रकृति बिना पुरुष के नहीं रह सकती। रायदेवा ने प्रेम-विदा की शादी किसी गहलौत राजपूत से ठहराई है जो मेवाड़ के राणा का संबंधी है। इससे अधिक मुझे और पता नहीं है।"

दुर्गावती-"मगर यह बातें आपने मुझसे पहले नहीं कहीं।"

बीसलदेव—"मुझे अवसर नहीं मिला और न तूने स्वयं कभी पूछा और जानकर भी तू क्या कर लेती ?"

दुर्गावती—"अगर आरम्भ से मुझे मालूम होता तो मैं स्वयं जाकर पटहर सरदार को समझाती बुझाती।"

सम्भव है कि रायदेवा अपनी अज्ञानता पर हैरान हो कर दुखी हो गया हो। उसके दुख की ख्याली धारों ने इन दूर पड़े आदमियों को प्रभावित किया हो. जैसा कि हमने इस प्रकरण की प्रारम्भिक पंक्तियों में लिखा है।

छब्बीसवाँ प्रकरण

दुर्गावती और रायदेवा

बिरह जलंती देखकर, साईं आये धाय।
प्रेम बूंद सो छिड़क कर, जलती लिया बुझाय॥
(कबीर साहब)

मनुष्य जीवन की सफलता व असफलता उसके अंतरीय भावों से संबधित है। जो दिला को एकाग्र करना जानता है वह सफल होता है; जिसे इस भेद से जानकारी नहीं है वह असफल होता है। अगर तुम सांसारिक परिश्रमों में सफल हो तो जान लो कि काम धंधों में और व्यवहार के विषय में तुम्हारा चित्त जाने या अनजाने एकाग्र और एक ओर है। और अगर तुम पग पग पर असफलता की ठोकरें खाते हो तो जान लो कि तुम्हारा चित्त जाने या अनजाने एकाग्र और एक ओर नहीं है

यह सूफी मत का सर्वोपरि भेद है। यह योग का वह दृढ़ नियम है जो कभी सत्य होने में चूक नहीं करता। तुम सहस्रों मीलों की दूरी पर रहते हुये अगर चित्त को एकाग्र करके अपनी ख्याली धार को किसी इच्छित वस्तु या मनुष्य तक पहुँचाकर उसे अपनी ओर खींचते रहो तो एक न एक दिन वह स्वयं तुम्हारी ओर खिचा हुआ आयेगा और वह लाख विरोध करने का प्रयत्न करे मगर तुम्हारे दृढ़ और एकाग्रित आकर्षण का सामना न कर सकेगा। जो कुछ यहाँ खेल दिखाई देता है, वह केवल मन का खेल है। जिसको चाहो पास बुलालो, जिसको चाहो दूर भगादो। आकर्षण करने वाली ख्याली धार को मन में एकाग्र करके और फिर उसको चालू करके कि इच्छित वस्तु से टकरा देना योग के शब्दों में संयम कहलाता

हम किसी को क्या समझावें। समझने वाले नहीं हैं अन्यथा यदि मनुष्य एकाग्र चित्त होने का अभ्यास करे तो कभी असफल नहीं हो सकता। अजी मनुष्य तथा सांसारिक वस्तुओं का क्या अस्तित्व है इस एकाग्र चित्त वृति के अभ्यास और उसके बार बार बाहर भेजते रहने से आदमी ईश्वर और देवताओं तक को अपने पास बुला लेता है। यही भेद अवतारवाद की फ़िलोसफी है, यही वेदों का असली आवाहन मंत्र है जिसके बल से देवताओं को निमंत्रण देकर आवाहन किया जाता था। इसी से तंत्र शास्त्रों के जानने वाले मोहन, मारन और उच्चाटन का अमल करते थे। असली यज्ञ और हवन स्वयं क्या हैं? चित्त रूपी अग्नि को केन्द्र बनाकर ख्याली आहुतियों को दे देकर उसको भीतर ही भीतर प्रकाशित करना हवन है मगर दुनियाँ बाह्य दृष्टि वाली हो गई है। वह अंतरीय विद्या के संकेतों को नहीं समझती। इसी कारण से यह बातें उसकी समझ में नहीं आतीं। दुर्गावती के हृदय में प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई कि रायदेवा रतनगढ़ में आये मगर इसे वह लज्जा से किसी पर प्रगट नहीं करती थी। मुख से प्रगट कर देने से चित्त में निर्बलता आ जाती है। उसका ख्याल अपने आप ही भीतर ही भीतर एकाग्र होता गया। उससे आकर्षण की धार निकली और बूंदी में जा जाकर रायदेवा पर प्रभावित होने लगी। बीसलदेव और प्रेमविदा भी दोनों अनजाने इसी अभ्यास को करते रहे। इसका कुदरती प्रभाव तो पड़ना ही था। इसके सिवाय रायदेवा को स्वयं दुर्गावती का ख्याल था। जब मेनाओं की ओर से छुटकारा मिला और उसका भय जाता रहा उसने सौ डेढ़ सौ आदमी साथ लेकर बड़ी तीव्रता और शीघ्रता से रतनगढ़ की ओर पग बढ़ाया। प्रेमविदा और दुर्गावती किले की

उठा लाई। उसके हाथ में रखदीं। "यह तस्वीरें तुम्हारे प्रश्न का उत्तर हैं।"

गंगाराम को आश्चर्य हुआ। यह तस्वीरें उसी की थीं। दोनों देहली में तैयार हुई थीं। समरसी ने इनको बनवाया था, मगर समरसी से और दुर्गावती से कभी मिलने का समय नहीं मिला। उसने सोच समझकर यह परिणाम निकाला कि समरसी ने प्रेमविदा को दी होंगी और प्रेमविदा ने दुर्गावती को दी होंगी। वह चुप हो गया।

दुर्गावती—"मुझे देहली में तुम्हारी शकल सूरत देख कर भ्रम हो गया था। मैंने तुमसे सवाल भी किये थे मगर तुम टाल गये।"

गंगाराम—"तो आपको अपने आप अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया। मुझे कहने की आवश्यकता नहीं हुई।"

दुर्गावती—"प्रश्न तो ज्यों का त्यों रह गया। मुझे यह नहीं बताया गया कि यह स्वाँग किस विशेष उद्देश्य से भरा गया था।"

गङ्गाराम—"तुम जानती हो, फिर भी हठ करती हो। मेरी अवस्था के पुरुष के लिये ऐसी बात मुख से निकालना अच्छा नहीं मालूम होता।"

दुर्गावती हँसी—"तुमने सुना होगा कि संसार में तीन प्रकार के हठ होते हैं। राज हठ, बाल हठ और त्रिया हठ। तुमने दो का तो अनुभव कर लिया होगा अब तीसरे की बारी है।"

गंगाराम—"बहुत अच्छा अगर आप हठ पर तुली बैठी हैं तो सुन लीजिये कि मैं आपके पास रहना चाहता हूँ।"

दुर्गावती लज्जित हुई। "यदि आपको मुझे पास रखने और मेरे पास रहने का इतना ख्याल था तो देहली से वापिसी के बाद यहां क्यों नहीं चले आये। इतने वर्ष क्यों लगाये?"

गंगाराम— "यह कहानी बहुत लम्बी है। मुझे बहुत काम करने थे।"

दुर्गावती—"मैं नहीं समझती मुझमें कौन से गुण हैं जिनके कारण से तुमको मेरे पास रहने का इतना ख्याल है। मैं स्त्री हूँ। स्त्रियां निर्बल और कम समझ प्रसिद्ध हैं। एक समय तुमने मुझे महारानी कहा। फिर उपदेश देने वाली बताया। पता नहीं आगे चल कर और क्या क्या कहने लग जाओगे। तुम वीर हो, निस्स्वार्थ हो, बुद्धिमान हो, उदार हो। स्त्रियां निस्संदेह ऐसे पुरुष पर हर समय जान देती हैं और ऐसे पुरुष की आधीनता का दम भरती हैं और उसके लिये सब कुछ त्यागन करने के लिये उद्यत हो जाती हैं मगर यहाँ तुम जैसे पुरुष का केवल साधारण स्त्री के पास रहने का इच्छुक रहना आश्चर्य की बात है। तुमने मेरे सवाल का जवाब तो दिया मगर यह नहीं बताया कि क्यों मेरे पास रहने की तुमको इतनी इच्छा है। मुझमें तो प्रत्यक्ष रूप से कोई गुण भी नहीं हैं।"

गंगाराम—"आप दिलेर हैं। मुझे पहले इसका प्रमाण मिल गया था। आपका हृदय बड़ा नेक है। नौकरों के साथ आपका बर्ताव अत्यन्त उदार था। आप बुद्धिमान हैं। इस समय की बात चीत इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। यदि आपकी निकटता मुझे प्राप्त हो जाये तो मेरे भाग्य का क्या कहना है। इसके सिवाय.....।"

गंगाराम कुछ और कहने को था मगर वह बूदम बन कर टाल गई। उसे ज्ञात हो गया कि अब गंगाराम खुलकर साफ ढँग से अपनी बात कह सुनायेगा। उसने उसे रोक दिया। कहा—"आप आराम करो। पिताजी से जो ठीक हो, कहो सुनो।" गंगाराम वहां से चला आया।

सत्ताईसवां प्रकरण

रायदेवा और नव युवक मेंना

मानुष सोई जानिये, करे मनुष का काज।
मानुष सेवा के लिये, कभी न आवे लाज॥

सूखे वृक्षों की जड़ को जब पानी मिलता है वह लहलहा उठते हैं। धान के सूखे खेत वर्षा के पानी की बूँदों से इस प्रकार भरे हुये सुन्दर दिखाई देते हैं कि देखने वालों का चित्त उनके दृश्य से कँवल की तरह खिल जाता है। कठिन सर्दी की ऋतु के बाद वसंत ऋतु प्रकृति के कारोबार को विशेष प्रकार का सौन्दर्य प्रदान करती है। अँधेरी रात के बीतने पर सूर्योदय की किरणें पृथ्वी पर कुल संसार को प्रकाशमान कर देती हैं। इसी प्रकार निराशा और आशा के दम भरने वाले पुरुष को जब आशा की झलक दिखाई देती है उसकी खुशी के भाव उभर खड़े होते हैं। यही दशा उस समय रतनगढ़ के रहने वालों की हुई। दुर्गावती से मिल कर गंगाराम ने प्रेमविदा के देखने की इच्छा प्रगट की। भाई बहन मिले। फिर तो बीसलदेव को भी ज्ञात हो गया कि यह स्वयं रायदेवा ही है। भ्रम तो उसे पहले ही से था मगर वह असमंजस में पड़ा था। यह रहस्य खुल गया। उसने फिर उसकी दया का धन्यवाद दिया। रायदेवा के नाम से उसको अति प्रेम था। वह उसे संसार में सब से अधिक मान की दृष्टि से देखता था। देहली में उसके कार्यों को सुन कर उसके बड़प्पन का ख्याल और भी दृढ़ हो गया था।

रायदेवा केवल एक दो दिन का ही इरादा करके रतनगढ़ आया था। उसी रात को बीसलदेव ने ज्योतिषियों को बुलाकर शादी का मुहूर्त पूछा और रातोंरात प्रेमविदा का गहलौत

सरदार के पुत्र (उत्तम) से जो पटहर के सरदार का सहायक था विवाह किया। उसके बाद दुर्गावती का हाथ रायदेवा के हाथ में दिया गया। विवाह हो गया। वह पति पत्नी बन गये। हिन्दू धर्म शास्त्र के नियमानुसार उनके जोड़े मिला दिये गये। दूसरे दिन वह बिदा होकर बूंदी की ओर चल दिये, क्योंकि अधिक समय तक राजधानी से दूर रहना उचित नहीं था। विशेष कर जब से मेंना शत्रू हो गये थे, हर समय खटका रहता था।

जब वह हरावती के पास पहुँचे, दो चार मेंना नवयुवक मार्ग में मिले, रायदेवा ने उत्तम से कहा- "इनसे पूछो, यह कौन हैं ?" यह बोले—"हम मेंना हैं। बूँदी के रायदेवा की खोज में अपने सरदार जेठ की ओर से गये थे। ज्ञात हुआ कि रायदेवा रतनगढ़ गये हुये हैं। निराश हो कर वापिस जा रहे हैं।"

रायदेवा उनसे मिला—"मैं रायदेवा हूँ। तुमको मुझसे क्या काम है ?"

मेंना—हमारी कौम आपसे हेकड़ी करने पर लज्जित है। भूल दोनों ही ओर से हुई। अब हम आपकी सहायता के इच्छुक हैं।"

रायदेवा—"इस सहायता की क्या शकल सोची गई है ?"

मेंना—हरावती से निकलकर हम मेवाड़ के राणा की शरण में आये। चितौड़ के इलाके के आस पास जहां जिसकी इच्छा हुई वह वहां बस गया। रहने को स्थान तो मिला मगर राणा की शरण केवल नाम मात्र है। हमारे सरदार जेठ हैं। वह निर्बल हैं, रैला बन में राय गंगो कीची रहता है। उसकी लूट पाट से हम बहुत दुखी हो गये हैं। सरदार का कुछ बस नहीं चलता और न राणा हमारी सहायता करते हैं। गंगो

ने हम पर एक प्रकार का कर लगाया है जिसे वह "वीर की दुहाई" कहता है। धारी बस्ती में हर दूसरे महीने की पूर्णमासी के दिन आता है। हम विवश होकर उसका कड़ा टैक्स ले जाकर सीमा के किनारे रख आते हैं और वह नियत समय पर आकर ले जाता है। उसका क़िला रामगढ़ यहाँ से पास है और बूंदी से भी दूर नहीं है।"

रायदेवा—"मैं उसे जानता हूँ। तुम चाहते क्या हो?"

मेंना—"अगर केवल टैक्स तक ही होता तो संतोष किया जाता इतनी घबराहट न होती। यद्यपि हमारे सरदार ने उसकी शर्त को मान लिया मगर उसने लूट पाट को नहीं छोड़ा। हममें उसके विरोध की शक्ति नहीं है।"

रायदेवा–"फिर क्या तुम मुझसे सहायता मांगने आये हो?"

मेंना—"हाँ, हमारा बूंदी जाने का यही इरादा था। आप हमारी सहायता कीजिये।"

रायदेवा—"किस शर्त पर?"

मेंना--"हम फिर आपकी शरण में आते हैं। जिस शर्त पर मेवाड़ के राणा ने हमको शरण देने का वायदा किया है उसी शर्त का लिहाज आप भी कीजिये। हमारी जातीयता और स्वतंत्रता को धक्का न पहुंचे। हम अपने सरदार के आधीन समझे जायें। समय पर हम और हमारे सरदार अपने आदमियों के साथ आपके शरीक रहेंगे और आप राय गंगो के अत्याचार से हमको मुक्ति दिलाइये।"

रायदेवा--"यह शर्त मुझे स्वीकार है, परन्तु ऐसा न हो कि फिर प्रतिज्ञा भंग की जावे।"

मेंना--"मेंना प्रतिज्ञा भंग नहीं हैं। आपको इसका अनुभव हो गया है। इसके सिवाय उनका कोई अपना राज्य नहीं है। हम

प्रसन्नता पूर्वक आपकी आधीनता में आरहे हैं और फिर कभी सिर उठाने का साहस न करेंगे।"

रायदेवा—'आज ही पूर्णमासी का दिन है। वह किस समय "वीर की दुहाई" लेने आता है?"

मैंना—"रात के समय वह अकेला ही आता है।"

रायदेवा—"क्या तुम सब उस अकेले का भी सामना करने का साहस नहीं कर सकते?"

मैंना—दूध का जला छाछ फूँक फूँक कर पीता है। हम आपकी आधीनता में अधिक स्वतंत्र और प्रसन्न थे। अब स्वतंत्रता और प्रसन्नता दोनों को खो बैठे। मछली पहले पानी से निकली। तवे से उछलकर चूल्हे में जा गिरी। यह हमारा हाल हो रहा है। उसका सामना करने की तो हम शक्ति रखते हैं, परन्तु भय है कि अगर सफल नहीं हुये तो हमारी फिर कुशलता कहां है। रायगंगो के पास एक अपूर्व तीव्र गामी घोड़ा है। एक दो को कौन कहे वह सैकड़ों आदमियों के जमघट से बचा लेता है। बिजली की कड़क की तरह वह इधर कड़क कर चमका और पल के पल में उधर जा निकला। उसके रास्ते में नदी, पहाड़, जंगल रुकावट नहीं बन सकते। वह इतना तीव्र है कि किसी शत्रु के हथियार उस पर और उसके कारण से उसके सवार पर चोट नहीं कर सकते।"

रायदेवा—बहुत अच्छा! मुझे तुम्हारी सहायता स्वीकार है। मैं मैंना को अपने हाथ से खोना नहीं चाहता था, मैं अपने आपको इस खतरे में डाल दूँगा। वह जगह कहां है, जहाँ वह आज तुमसे टैक्स लेने आयेगा?"

मैंना—"हमारी बस्ती यहां से बहुत पास है। एक दो मील की दूरी समाप्त करने पर उसकी दीवार दिखाई देगी। वह हम आपको दिखादेंगे। उस दीवार पर गंगो का टैक्स थैलियों में

बंद करके रख दिया जाता है। वह अकेला आता है और स्वयं उठा ले जाता है।

रायदेवा—"तो मुझे भी उससे अकेला ही मिलना चाहिये क्योंकि संभव है कि भीड़ भाड़ को देखकर वह सामना न कर सके और मेंना को उसका फल उठाना पड़े।"

मेंना—"आपको इसका अधिकार है। अगर आपने गंगो के फन्दे से हमको छुड़ा दिया तो हम आपके बहुत ही आभारी होंगे।"

अट्ठाईसवाँ प्रकरण

रायदेवा और रायगंगो

सूरे से सूरा मिले, बाढ़ै प्रेम प्रतीत।
सूरे से कायर मिले, तुरतै टूटै प्रीत॥

रायदेवा ने वह मुख्य स्थान देखा जहाँ टैक्स के थैले रक्खे जाते थे। शाम के समय इसने दुर्गावती और अपने दूसरे साथियों को किसी गुप्त स्थान पर ठहरा दिया। नव-युवक मेंना को भी वहाँ ही रहने की आज्ञा दी। आप हथियार बन्द होकर घोड़े पर सवार हुआ। हाथ में लम्बा भाला था। वह सफील पर गंगो के आने से पहले पहुँचा। थैलियों को उठा लिया और उसकी राह देखने लगा।

गंगो अधिक रात बीतने पर वहाँ पहुँचा। देखता क्या है कि थैलियों का नाम निशान तक नहीं है। बड़ा चकित हुआ और उसके मुख से उच्च स्वर में निकल गया—"मुझसे पहले यहां कौन आया था। यह कभी सम्भव नहीं है कि रुपया यहां न रक्खा गया हो।" अभी कठिनता से यह शब्द उसके

मुख से निकले ही थे, कि रायदेवा उससे मुठभेड़ करने के लिये आ पहुंचा। "मैं ने यहाँ से रुपये उठाये हैं। मेरे सिवा और कोई आदमी मेंना लोगों से टैक्स वसूल करने का अधिकार नहीं रखता।"

गंगो ने भाला संभाला। रायदेवा ने उसका जवाब दिया। दोनों बलवान और लड़ाके थे। दोनों के वार खाली जाते थे। एक को दूसरे का घायल करने का अवसर हाथ नहीं आता था। दोनों के घोड़े बला के तेज और सवारों के भावों को भांपने वाले थे। जब गंगो ने देखा कि भाला चलाने में उसका विपक्षी उससे कम नहीं है, पैंतरा बदलकर कमर से तलवार निकाली और बिजली के कौंधे की तरह पीछे की ओर से दीवार पर झपटा। उसने तलवार चलाई। इसने रोका। दोनों की तलवारें खटखट बीच से टूट गईं। वह टूटी हुई तलवारों से ही लड़ने लगे। मगर एक दूसरे पर विजयी न हो सके। गंगो समझ गया कि विपक्षी इससे होशियार और अधिक अनुभवी है। विवश भागने का मार्ग टटोलने लगा मगर रायदेवा हर समय छाया की तरह मौजूद था। गंगो को जान बचाना कठिन हो गया। रामगढ़ का किला पूरब की ओर था। यह पहले दक्षिण की ओर दौड़ा फिर पूरब की ओर रुख किया। वहां ऊँचे ऊँचे पहाड़ी टीले थे और इनके नीचे चम्बल नदी बहती थी। रायदेवा ने समझा—"वह अब कहां जाता है अभी मार लेता हूं। इस जगह वह अवश्य ठहरेगा और आमने सामने की लड़ाई क्षण भर में फैसला कर देगी कि कौन अधिक बलवान है और किसको असल में मेंनाओं से टैक्स लेने का अधिकार प्राप्त है।"

मगर गंगो वहाँ नहीं ठहरा। वह एक और ऊँचे टीले पर चढ़ गया। जिसके बिलकुल ही नीचे नदी बहती थी। चम्बल

बहुत गहरी नदी थी। गंगो आगे आगे, रायदेवा पीछे पीछे। ऊँची चोटी पर पहुँच कर उसने घोड़े को कुदाया। घोड़ा और सवार दोनों पानी में गुम हो गये।

रायदेवा ने यह हालत देखी। स्वयं बहादुर सूरमा था। बहादुरी पसंद आदमी बहादुरों की वीरता देखकर प्रसन्न हो जाते हैं। इसे रंज हुआ। उसे पूर्ण विश्वास हो गया कि डुबकी मारने वाले की किसी हालत में जान न बच सकेगी और वह दिल ही दिल में अफसोस करने लगा। "दो मिनट पांच मिनट दस मिनट बीते। देखता क्या है कि गंगो मय अपने घोड़े के पानी की सतह पर आ गया और देखते देखते दूसरे किनारे पर सही सलामत बचकर निकल गया।

रायदेवा ने आवाज़ दी–"वाह! क्या कहना है तेरी वीरता का। जरा मुझे अपना नाम तो बता जा।" उसने जवाब दिया– "मैं रावगंगो कीची हूँ। तेरा क्या नाम है? तू भी तो वीर है।"

रायदेवा बोला—"मैं रायदेवा हाड़ा हूं। तूने मेरा नाम सुना होगा। आज बजाय दुश्मन के हम दोनों भाइयों की तरह रहेंगे और वह चम्बल नदी हमारे अधिकारों की सीमा की दीवार समझी जायगी। देखना अब मेंनाओं को न सताना।"

गङ्गो—"स्वीकार है। तू भी मेरे कार्य में अब दखल न देना।"

देवा—"खुशी से स्वीकार है। कल बूंदी आकर मुझ से मिल जाना।

गंगो उधर गया। रायदेवा वहाँ पहुंचा, जहाँ दुर्गावती और उसके साथी उसकी राह देख रहे थे। उसने पहुंचकर मेंना युवकों से कहा–"लो मुबारिक हो। अब गङ्गो कभी तुमको न सतायेगा। यह टैक्स वापिस ले जाओ। जिसने जो कुछ दिया सब उनको लौटा दो और मैं तुम्हारी स्वतंत्रता को स्वीकार

करता हुआ तुमसे समय समय पर सहायता का इच्छुक रहूँगा। जिसको तुमने स्वीकार कर लिया है।"

मेंना धन्यवाद और नमस्कार के बाद अपनी राह गये। यह बूंदी आये। दूसरे दिन गंङ्गो और जेठ दोनों देवा से मिले। इनमें सदा के लिये संगठन हो गया और उस दिन से रायदेवा बूंदी में रहता हुआ और तरह का जीवन व्यतीत करने लगा।

उन्तीसवाँ प्रकरण

जीवन के अंतिम भाग का फल

जनम मरन दुख याद कर, कूड़े कर्म निवार।
जिन जिन पंथों चालना, सोई पंथ सँवार (कबीर साहब)

हरों (हाडों) की राजधानी बन गई। इसका क्षेत्रफल बहुत बड़ा हो गया। अब तक भी वह हाड़ों की राजधानी है। उसकी नींव सन् १३४२ ई० सम्वत् १३९८ विक्रमी में पड़ी थी। राय-देवा और दुर्गावती कई वर्ष तक आपस में प्रेम और सहा-नुभूति का आनन्द उठाया किये। अन्त में एक दिन बूंदी में शाही महल के पास एक साधू आ निकला, जिसकी सूरत से दैवी प्रकाश बरसता था। रायदेवा उससे मिला। पूछा-"आप कहाँ से आये हैं? उसने उत्तर दिया—"काशी से" "कहाँ का इरादा है?" "कहीं का नहीं। मौज ने यहाँ पहुँचाया। अपने हंसों के चिताने के लिये इस जगह आया।"

"आप कौन हैं? क्या नाम है?"

"जुलाहा हूँ। लोग इस शरीर को कबीर कहते हैं।"

मैंने मुसलमानों से आपका नाम सुन रक्खा था। धन्य है।

आज दर्शन भी हो गया। क्या आज्ञा है ?"

"मैं तुम्हारे ही लिये यहां आया हूँ। समय निकट आ रहा है। तुम्हारे मित्र सोलंकी राजा को मैंने चिता दिया। उसने तुमसे मिलकर अनुचित काम किये थे। अब गुजरात देश से सोलंकियों का नाम निशान मिट जायगा। अत्याचार की उम्र अधिक नहीं होती। राजा भक्त हो गया। उसने और उसकी रानी ने अपना वंश कायम रखने की प्रार्थना की। मेरे आशीर्वाद से मेरा अंश रानी के गर्भ से उत्पन्न हुआ।"

बाघ जैसी शकल ! मां बाप ने भय और घृणा के कारण से बच्चे को जंगल में फेंक दिया। मेरा उधर से आना हुआ रोते हुये बच्चे को गोद में उठा लाया। उनको इस दुर्व्यवहार पर भला बुरा कहा। वह लज्जित हुये। मैंने इस लड़के का नाम व्याघ्र देव रक्खा। उसे बांधोगढ़ (रीवां) का राज दिया। अब यह सोलंकी न कहलायेंगे, किन्तु बघेल कहलायेंगे और ब्यालीस पीढ़ी तक बघेलियों की संतान दुनियाँ में रहेगी। यह मेरी दुनियाँ की संतान है जो हुकूमत करेगी। मेरी आत्मिक संतान धर्मदास धनी से चलेगी। वह भी ब्यालीस पीढ़ी तक काम करेगी। मालिक की इच्छा ऐसी ही है। अब मुझे तुम्हारे चिताने का ख्याल है। यह भावना मुझको लाई है।"

"फिर मेरे लिये क्या आज्ञा है ?"

"पहाड़ पर चम्बल नदी के किनारे चलो; मैं तुमको उपदेश दूंगा। तुमने व्यर्थ मेंनाओं पर अत्याचार किया। उनका प्रायश्चित आवश्यक है। तुम कौम के शत्रु बनकर नहीं आये थे मगर अहंकार और गलती में आकर तमने शत्रुता की। इस अपराध का बदला देना जरूरी है। नहीं तो हाड़ों की संतान का

संसार से अंत हो जायगा।"

फ़कीर की सूरत से तप और तेज का प्रभाव प्रगट हो रहा था। रायदेवा जैसा सूरमा राजपूत उसके प्रभाव में आ गया। बोला "मैं हाजिर हूं"। उसने कहा—"तब मेरे साथ चलो।"

दोनों साथ हो लिये। रानी से भी न रहा गया। वह भी उनके पीछे चली। इन तीन के सिवा और कोई चौथा आदमी उनके साथ नहीं था।

ये पहाड़ के ऊपर पहुँचे। तीन भारी शिला पड़ी हुई थीं। कबीर साहब ने आज्ञा दी—'इनको उठालो और मेरे पीछे पीछे जल्दी जल्दी चले आओ।' रायदेवा ने क्रमशः उनको उठा लिया। साथ चला, मगर शिला भारी थी। पैर उठाना कठिन था।

उसने कहा—"हुजूर! सर पर बोझ भारी है। चलना कठिन है।" अच्छा! "एक शिला फेंक दो।" उसने एक को फेंक दिया। उसने चार कदम चल कर फिर शिलाओं के भारी होने की शिकायत की। अच्छा। 'दूसरी भी फेंक दो।' उसने ऐसा ही किया। दस बीस कदम चलने पर फिर बोला—"सर पर बोझ लेकर चलना आसान नही है।" "बहुत अच्छा! तीसरी भी फेंकदो।" उसने ऐसा ही किया और फिर हलका होकर फ़क़ीर के साथ हो गया। दुर्गावती हैरान थी कि "यह क्या हो रहा है।" मगर मुँह से न बोल सकी। रायदेवा कुछ इस साधारण साधू के इतने प्रभाव में आगया कि उसका मन और बाणी उसके नहीं रहे थे। पता नहीं इस साधू में क्या शक्ति थी, जिसने उस जैसे वीर को भी आधीन कर लिया था।

तीनों पहाड़ की चोटी पर पहुँचे। कबीर साहब आसन मार कर बैठ गये। इसे भी बैठने की आज्ञा दी, वह बैठ गया

उन्होंने कहा—"रायदेवा ! सर पर बोझ लेकर पहाड़ पर चढ़ना कठिन था। देखो बोझ के उतर जाने से तुम किस प्रकार हलके हो गये। समझो मनुष्य के तीन कर्म—क्रियमाण, संचित और प्रारब्ध यह उसके जीवन के बोझ हैं। उसके तीन शरीर-स्थूल, सूक्ष्म और कारण भी बोझ हैं और गुण—सत, रज और तम को भी ऐसा समझलो। जब यह सर से उतर जाते हैं, तब आदमी हल्का होकर ब्रह्मरेन्द्र पर्वत की चोटी पर जासकता है। इससे पहिले सम्भव नहीं है। अब तुमको अपने अंदर के पहाड़ पर चढ़ाई करना होगा। तिल की ओट पहाड़ है। नाक की सीध में चलना होगा तब ब्रह्मरेन्द्र की चोटी पर पहुँचना होगा।"

रायदेवा ने कहा—"हुजूर मैंने यह रहस्य नहीं समझा।"

कबीर साहब ने उत्तर दिया—"राजन ! मैं तुम्हें समझाने के लिये लाया हूँ। तिल तुम्हारी दोनों आँखों के पीछे है। वह तीसरी आंख है वह रुद्र नेत्र है। शिव नेत्र और तीसरा तिल कहलाता है, सूफी इसको नुक्तये सवेदा कहते हैं। तुमको इस शिव नेत्र में आसन जमाकर बैठे बैठे ब्रह्मरेन्द्र शिखर पर चढ़ना होगा। वह चोटी इसी तिल की ओट में है और उसका रास्ता नाक की सीध में है। स्त्रियां नाक पर कंघी जमाकर मांग निकालती हैं। यही मांग सीधा रास्ता है। उसका अंतिम स्थान उस जगह है जहां हिन्दुओं की चोटी होती है, जो मनुष्य की शारीरिक व्यवस्था में कुल नस नाड़ियों का केन्द्र है। उसी जगह पहुँच ने का साधन बताया जाता है। यह रास्ता सुषुम्ना नाड़ी है इसी से हो कर अब तुमको ऊपर चलना होगा।"

रायदेवा—"हुजूर ! यह क्या साधन है?"

कबीर—"इसका नाम सुरत शब्द योग है। यह योग का बहुत ही सरल मार्ग है। तुमने जीवन में बड़ी खेंचतान की है।

कर्म करने से तुम्हारा हृदय विशाल, दृष्टि ऊँची और स्वभाव भी ऊँचा हो गया है। तुम सरलता से अभ्यास करते हुये विचार को एकाग्र करके उस पर बिना पैरों के ही चढ़ जाओगे। बिना जिभ्या के ही अपने भीतर अनहद राग सुनोगे। बिना सूर्य्य के प्रकाश के दृश्य देखोगे। इनसे तुम्हारा दिल अपने आप एकाग्र, प्रसन्न और संतुष्ट होता जायगा। यद्यपि तुमने बहुत से अनुचित कर्म किये हैं मगर उनके प्रभाव भी अपने आप नाश होजांयगे और तुम मनुष्य जन्म को सुफल करलोगे।"

रायदेवा ने प्रसन्नता से इस अभ्यास के सीखने की स्वीकृति प्रगट की। कबीर साहब ने उसे दीक्षा दी। अपना शिष्य बनाया, साधन सिखाया, सामने बिठाकर अभ्यास कराया। कुछ क्षण में ही उसकी सुरति दिमाग की ओर आकर्षित होगई। उसी दिन उसने अध्यात्मिक ज्ञान के दृश्य देखे। आधे घंटे तक वह निश्चल बैठा रहा। जब होश में आया कबीर साहब उसकी हालत देख कर प्रसन्न हो गये और प्रसन्नता में आकर यह राग गाकर सुनाया :—

(१) भाग जगा गुरु सन्मुख आये, भव का फंद कटाया हो।
सोया मनुआँ जनम जनम का, दया से अपनी जगाया हो॥
(२) गूंगा बोले मधुरी बाणी, लूला शिखर चढ़ाया हो।
अँखिया उलट जो तिल को बींधा, दृश्य अनूप दिखाया हो॥
(३) बिन बादल पानी की धारा, रिमझिम रिम बरसाया हो।
अमी बूंद स्वाद रस मीठा, चढ़ धर अधर पिलाया हो॥
(४) बिना नयन के मोती पोहे, बिन सुर शब्द सुनाया हो।
तिल की ओट ब्रह्मरेन्दर चोटी, नाक की सीध चलाया हो॥
(५) जगमग ज्योति की महिमा भारी, सूरज चांद लजाया हो।
शब्द अनाहद अंतर जागा, सुन सुन मन हरषाया हो॥
(६) सहस कमल दल पार ठिकाना, त्रिकुटी ओम बताया हो।

बादल गरजे बिजली चमके, धुन मृदंग लौ लाया हो ॥
(७) सुन्न महासुन मानसरोवर, अमृत कुंड नहाया हो।
काग से सुरत भई अब हंसा, मोती ज्ञान चुगाया हो ॥
(८) भँवर गुफा में मुरली बाजी, सोहं नाद मचाया हो।
खिड़की खोली झिलमिली दरसी, मन सत पद ठहराया हो॥
(९) बीन बजै जहाँ सत् सत हक़हक़, कर्मका भाव मिटाया हो।
भव दारुण से बच कर भाग, सत्त नाम धन पाया हो ॥
(१०) कहें कबीर भेद की बातें, बिरला कोई समझाया हो।
समझ बूझ जो घट में आवै, ताहि यह पंथ लखाया हो ॥

रायदेवा की दशा बदल गई, आँखें लाल हो गईं। पैरों पर गिरा। "भगवन ! तुम धन्य हो। तुम्हारो लीला अपरंपार है। अब यह आज्ञा हो कि मैं सेवक को हैसियत में आपके साथ रहूं।"

अभी कबीर साहब ने उसके इस सवाल का उत्तर नहीं दिया था कि दुर्गावती को समय मिल गया। फिर वह चरणों में गिरी और पैर पकड़ लिये। "महाराज ! अगर मेरा पति मुझसे छीन लिया गया तो फिर मैं कहीं की भी न रही। मेरा भी उद्धार कीजिये

कबीर साहब मुस्कराये "महारानी ! मैं तेरे पति को इस जन्म में तुझसे अलग करने को नहीं आया, परन्तु तू अगर इसके साथ रहने की इच्छक है तो तू भी इस साधन को सीखले और स्त्री पुरुष दोनों आज से इसी कमाई में लग जाओ। उसने स्वीकार किया। कबीर साहब ने उसे भी साधन सिखाया। उसकी भी समाधि लग गई। जब वह होश में आई, रायदेवा ने सवाल किया—"अब क्या आज्ञा है ?"

कबीर साहब बोले—"तुम्हारे पिता ने भूलोक के बादशाह के दरबार में भेजा था। मैं तुम्हें आकाशी बादशाह के धाम को भेजना चाहता हूं। तुमको आज से बूंदी से भी देश निकाला दिया जाता है। अब तमको बंदी में रहने की आज्ञा नहीं है,

नहीं तो तुम्हारे पुराने मन के संस्कार फिर से जाग्रत हो जायेंगे, और तुमसे परमार्थ की कमाई न हो सकेगी।"

रायदेवा—"सत् बचन! महाराज की जो आज्ञा है वह सर आंखों पर।" ये तीनों आदमी अभी पहाड़ी ही पर थे कि राजकुमार समरसी कुछ अहलकारों के साथ उनकी खोज में वहाँ आ पहुँचा। रायदेवा ने उससे आकर्षित होकर कहा—"बेटे! बमौदा का राजा तेरा बड़ा भाई हर राज बनाया गया था। आज से तू बूँदी का राजा बनाया जाता है। सत् गुरू की आज्ञा है—"मैं अब बूँदी न जाऊँ इसलिये मजबूरी है।"

कबीर साहब ने समरसी का राज्य तिलक मिट्टी से किया और उसे बिदा करके रायदेवा और दुर्गावती को साथ लिये हुये अमरथूना गांव में आये। यहां ही दोनों बहुत समय तक योग के साधन में रहे। इतिहास साक्षी दे रहा है कि फिर जीते जी वह न बमौदा गये और न बूँदी की चार दीवारी में पग रक्खा। कबीर साहब उन दोनों को चिताकर काशी की ओर चले गये और रायदेवा और दुर्गावती दोनों ने परमार्थ की कमाई करते हुये अमरथूना ही में प्राण और प्राण के साथ शरीर का त्याग किया। यह इन के जीवन का परिणाम हुआ और यह परिणाम कैसा धन्य हुआ। धन्य हैं वह लोग जिनको इस जन्म में सतगुरु मिल गये हैं। अब वह कभी संसार सागर में गोते न खायेंगे।

यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिलें, तो भी सस्ता जान॥
वस्तु कहीं ढूंढ़े कहीं, केहि विधि आवै हाथ।
कहैं कबीर तब पाइये, जब भेदी लीजै साथ॥
भेदी लिया साथ कर, दीनी वस्तु लखाय।
कोटि जन्म का पंथ था, पल में पहुंचा जाय॥

॥ इति ॥